nbt.india

एकः सूते सकलम्

पुस्तक संस्कृति

साहित्य और संस्कृति की द्विमासिकी

वर्ष - 6 • अंक - 5 • सितंबर - अक्तूबर 2021 • मूल्य ₹40.00

• शहीद स्मारक व स्वतंत्रता संग्राम शोध केंद्र • भाषा : एक प्रवहमान नदी • शिक्षा में भाषा का प्रश्न

• अफगानिस्तान में आधुनिक शिक्षा के सौ साल • माता भूमिः • साँझा चूल्हा

शिक्षा एवं कौशल विकास मंत्री : श्री धर्मेंद्र प्रधान

सात जुलाई, 2021 को राष्ट्रसेवी, सामाजिक कार्यकर्ता, 'उज्ज्वला मैन' के नाम से विख्यात श्री धर्मेंद्र प्रधान को केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय तथा कौशल विकास एवं उद्यमशीलता मंत्रालय का कार्यभार सौंपा गया। इसके पूर्व वे पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस और केंद्रीय इस्पात मंत्री थे। ओडिशा के अंगुल जिले के तालचेर में 26 जून, 1969 को जन्मे श्री धर्मेंद्र प्रधान मध्य प्रदेश से राज्यसभा सांसद हैं।

श्री धर्मेंद्र प्रधान ने ओडिशा के उत्कल विश्वविद्यालय से संबद्ध तालचेर कॉलेज से मानव शास्त्र में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की। छात्र-जीवन से ही उनकी सामाजिक और राजनीतिक कार्यों में रुचि थी। उन्होंने अपने राजनीतिक सफर की शुरुआत 1983 में छात्र नेता के रूप में की। 1985 में वे तालचेर कॉलेज स्टूडेंट्स यूनियन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। तत्पश्चात वे ओडिशा में विद्यार्थी और युवाओं के हित में होने वाले आंदोलनों में सक्रिय रूप से भागीदार बने रहे। ओडिशा विधानसभा में उनका पहली बार प्रवेश वर्ष 2000 में हुआ, जब वे पल्लहारा से निर्वाचित हुए। वर्ष 2004 में वे 14वीं लोकसभा और 2012 में वे बिहार से राज्यसभा के सदस्य निर्वाचित हुए। इसी वर्ष उन्हें सरकारी आश्वासन संबंधी समिति, टेलीकॉम लाइसेंसों और स्पेक्ट्रम के आवंटन और मूल्य निर्धारण से संबंधित मामलों की जाँच करने वाली संयुक्त संसदीय समिति, ग्रामीण विकास संबंधी समिति तथा कृषि संबंधी समिति का सदस्य भी बनाया गया। वर्ष 2014 में उन्हें पहली बार पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्रालय के राज्य मंत्री का स्वतंत्र प्रभार दिया गया। सितंबर 2017 में उन्हें पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्री के साथ-साथ कौशल विकास और उद्यमशीलता मंत्री का कार्यभार सौंपा गया। अप्रैल 2018 में राज्यसभा के लिए वे पुनः निर्वाचित हुए। इसके बाद 30 मई, 2019 से 06 जुलाई, 2021 तक वे पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस और केंद्रीय इस्पात मंत्री बने रहे।

श्री धर्मेंद्र प्रधान युवाओं से जुड़े मुद्दों, जैसे कि बेरोजगारी, कौशल आधारित शिक्षा का अभाव, किसान व ग्रामीण परिवेश, विस्थापित लोगों और अन्य पिछड़े वर्ग के लोगों के पुनर्वासन, पुनः स्थापन और उनके शारीरिक व मानसिक विकास के लिए किए गए सरकारी और गैर-सरकारी कार्यों में हमेशा से सक्रिय रहे हैं।

पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्री रहते हुए श्री धर्मेंद्र प्रधान ने प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना, जिसमें सात करोड़ बीपीएल कार्डधारकों को एलपीजी सिलिंडर की आपूर्ति कराने समेत अन्य कई महत्वपूर्ण योजनाओं को जनहित में लागू करने का सराहनीय कार्य किया है। अब वे देश के नए शिक्षा मंत्री का पदभार सँभालने के बाद भारत की शिक्षा व्यवस्था को नई ऊँचाइयों तक ले जाने के कार्य में पूर्ण निष्ठा और लगन से जुट गए हैं। उन्होंने नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के दिशा-निर्देशों की समीक्षा करके इसे धरातल पर लागू करने का भी संकल्प लिया है। यहाँ तक कि विश्वव्यापी कोरोना महामारी के चलते अंतरराष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था चरमरा गई है, ऐसे में भारत में डिजिटल शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए माननीय शिक्षा मंत्री ने मंत्रालय को आवश्यक कदम उठाने के निर्देश भी दिए हैं।

श्री धर्मेंद्र प्रधान ने शिक्षा और कौशल विकास को बढ़ावा देने, ग्रामीण क्षेत्रों में युवाओं और महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में भी सार्थक प्रयास किए हैं। अब कौशल विकास एवं उद्यमशीलता मंत्रालय के प्रमुख होने के नाते माननीय मंत्री जी पर देशभर में कौशल विकास के सभी प्रयासों का समन्वय करने, व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण संस्थाओं का निर्माण करने, मौजूदा नौकरियों और भविष्य में युवाओं के लिए रोजगार सृजन करने की जिम्मेदारी भी है, ताकि मंत्रालय का 'कुशल भारत' बनाने का जो उद्देश्य है, उसे गति मिल सके और आत्मनिर्भर भारत बनाने का सपना साकार हो सके।

श्री धर्मेंद्र प्रधान केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल के पदेन अध्यक्ष भी हैं। उन्होंने भाषा प्रोन्नयन पर भी विशेष बल दिया है। वे नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति की सराहना करते हुए विद्यालय व उच्च स्तरीय शिक्षा के पाठ्यक्रम का क्षेत्रीय भाषा में अध्ययन करने के लिए युवावर्ग को प्रोत्साहित करते हैं। इसी कार्यक्रम के चलते अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (एआईसीटीई) ने 11 क्षेत्रीय भाषाओं में बी.टेक. पाठ्यक्रम को मंजूरी दी है।

समाज और राजनीति में उत्कृष्ट योगदान देने के लिए श्री धर्मेंद्र प्रधान 'सर्वश्रेष्ठ विधायक पुरस्कार', 'उत्कलमणि गोपबंधु प्रतिभा सम्मान' और 'ओडिशा नागरिक सम्मान' से सम्मानित हैं।

प्रधान संपादक
प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सहायक संपादक
दीपक कुमार गुप्ता

संपादकीय सहयोग
विजय कुमार, मोहन शर्मा

विज्ञापन एवं प्रसार
कंचन वांचु शर्मा

उत्पादन
अनुज कुमार भारती, पवन दुबे

रेखाचित्र
उमेश कुमार

सज्जा/डिजाइन
ऋतुराज शर्मा, समरेश चटर्जी

शब्द संयोजन/कार्यालयीन सहयोग
प्रवीन कुमार

सदस्यता शुल्क
व्यक्तियों के लिए
एक प्रति : ₹ 40.00
वार्षिक : ₹ 225.00
(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र-व्यवहार
संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
पता : नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया
फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707876
ई-मेल: editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक अनुज कुमार भारती द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत) नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और रेक्मो प्रेस प्रा. लि., सी-59, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया फेज़-I, नई दिल्ली-110020 से मुद्रित।

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

पुस्तक संस्कृति

साहित्य एवं संस्कृति की द्विमासिकी
वर्ष-6; अंक-5; सितंबर-अक्तूबर, 2021

इस अंक में

संपादकीय — *प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा* 2

विरासत — **शहीद स्मारक व स्वतंत्रता संग्राम शोध केंद्र** —*डॉ. रश्मि कुमारी* 4

आलेख — **असमिया भाषा का इतिहास**—*निशा नंदिनी भारतीय* 7

लेख — **भाषा : एक प्रवहमान नदी**—*रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'* 9

लेख — **पर्यावरण संवहनीयता और मानव विकास**—*मुकेश पोपली* 12

स्मृति — **याद आती रहेंगी भानु अथैया**—*प्रदीप सरदाना* 15

आलेख — **शिक्षा में भाषा का प्रश्न**—*डॉ. साकेत सहाय* 19

व्यक्तित्व — **डॉ. कलाम : भारत में तकनीकी नवोन्मेष के प्रणेता** —*डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र* 22

स्मृति — **बलिया के वीर सेनानी : रामदहिन ओझा**—*प्रभात ओझा* 26

लेख — **नागपुर की डायमंड क्रॉसिंग**—*विमलेश चंद्र* 28

आलेख — **पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानियों में हिमाचली लोक साहित्य की प्रासंगिकता** —*डॉ. अदिति गुलेरी* 30

शब्द ज्ञान — **आओ भारतीय भाषाएँ सीखें** 32

आलेख — **अफगानिस्तान में आधुनिक शिक्षा के सौ साल** —*डॉ. संजीव राय* 34

आलेख — **कोरोना के संदर्भ में परंपरागत भारतीय जीवन** —*शक्ति भारद्वाज* 37

विरासत — **माता भूमिः**—*वासुदेवशरण अग्रवाल* 39

आलेख — **संस्कृत में अस्मिता तलाशती स्पेनिश बाला मारिया** —*अरुण नैथानी* 44

कहानी — **साँझा चूल्हा**—*बलवंत गार्गी* 46

पुस्तक समीक्षा 50

पुस्तकें मिलीं 60

साहित्यिक गतिविधियाँ 61

प्राचीन भारतीय शिक्षा

प्राचीन भारतीय शिक्षा आज भी हमें अपनी ओर आकर्षित करती है। शताब्दियों के उतार-चढ़ाव के बीच उसके प्रति हमारा लगाव कम नहीं हुआ है। इसका कारण यह है कि प्राचीन काल से शिक्षा की हमारी समृद्ध परंपरा चली आ रही थी, जिसकी विशिष्टताओं और मूल तत्वों को आधुनिक औपनिवेशिक शिक्षा ने समाप्त कर दिया। यही कारण था कि स्वतंत्रता संग्राम में 'स्वशिक्षा' की माँग एक प्रमुख कार्यक्रम बना।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी हम पश्चिम की विचार परंपरा, दर्शन और शिक्षा प्रतिमानों से प्रभावित रहे हैं। यद्यपि राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में इस दिशा से मुक्ति की आशा की किरण दिखाई देती है, तथापि एक लंबा सफर तय करना अभी शेष है।

पश्चिम की विचार परंपरा का प्रारंभ ग्रीक दार्शनिक चिंतन से माना जाता है। ग्रीक चिंतन में सुकरात, प्लेटो और अरस्तु की त्रयी का महत्वपूर्ण स्थान है। पश्चिम के शैक्षिक और बौद्धिक चिंतन पर उनके विचारों की छाया देखी जा सकती है। सुकरात ने व्यक्ति के स्वतंत्र चिंतन पर जोर दिया। वह परंपरागत मान्यताओं तथा पूर्वाग्रहयुक्त विचारों का समर्थक नहीं था, पर विचारक मानते हैं कि सुकरात ने व्यक्ति और समाज के बीच आदर्श संबंधों की स्पष्ट परिभाषा नहीं दी। प्लेटो ने आदर्श राज्य की स्थापना की पहल की, पर उसका आदर्श राज्य सभी व्यक्तियों के व्यक्तित्व के विकास का आधार नहीं बन सका। प्लेटो ने ज्ञान का उपयोग न्याय की प्राप्ति के लिए किया, पर प्लेटो का ज्ञान शासक वर्ग तक सीमित रहा। उत्पादक वर्ग उससे अछूता रहा। प्लेटो मनुष्यों की असमानता में विश्वास करता था। अरस्तु ने भी समाज को दो वर्गों में देखा। उसके मत में कुछ ही व्यक्ति होते हैं जो समाज और राज्य के कार्यों में सहभागी होते हैं। वे ही बुद्धिमान होते हैं। वे ही नेतृत्व कर सकते हैं और शासन कर सकते हैं, शेष नहीं। उसने दासता का समर्थन किया।

सामाजिक और व्यक्तिगत भेदभाव पर आधारित प्राचीन ग्रीक मान्यता दासत्व के समर्थन की है, मनुष्यों में समानता की नहीं। ईसाइयत भी मानती है कि सब-कुछ प्रकृति, पशु-पक्षी, मनुष्य के भोग के लिए है, वह जैसे चाहे, उनका उपभोग करे। 'ओल्ड टेस्टामेंट' के अनुसार मनुष्य-मनुष्य में भी भेद है। कुछ ही हैं जिन्हें मनुष्य माना जा सकता है, शेष को नहीं, उनका उपयोग किया जा सकता है। यही कारण है कि यूरोपीय शक्तियाँ जब अन्य देशों में गईं तो वहाँ के निवासियों को उन्होंने अपने से हीन और तुच्छ समझा।

यूरोप का ही दूसरा विचार जिसे 'मार्क्सवाद' कहा जाता है, समाज में उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व के लिए संघर्ष का चिंतन है। उसके लिए शिक्षा एक स्वतंत्र प्रक्रिया नहीं है, अपितु वह समाज में उत्पादक तथा उत्पादन पर नियंत्रण एवं उत्पादन संबंधों का निर्धारण करने वाली संस्थाओं के बीच पारस्परिक संबंधों के सांस्थानिक स्वरूप से प्रभावित है। मार्क्स मानता है कि आदर्श समाज सभी प्रकार के शोषण और व्यक्तिगत स्वामित्व से मुक्त होना चाहिए। उसने माना कि उसके लिए वर्ग संघर्ष और सर्वहारा वर्ग की तानाशाही आवश्यक है।

पाश्चात्य जगत में शिक्षा संबंधी कुछ अन्य विचार भी (प्रतिमान) हैं, जिन्होंने किसी-न-किसी सीमा तक शिक्षा को प्रभावित किया है, जैसे—प्रकृतिवादी चिंतन, जिसका प्रमुख विचारक रूसो माना जाता है, का विचार था कि बालक का विकास उसके भीतर की प्राकृतिक प्रक्रिया के अनुरूप होना चाहिए, बाहर से थोपे जाने से नहीं। प्रयोजनवादी (प्रैग्मेटिज्म) चिंतन जिसके प्रमुख विचारक विलियम जेम्स माने जाते हैं, का विचार है कि मनुष्य अपने आदर्श की स्वयं सृष्टि करता है। कोई विचार शाश्वत नहीं होता। पश्चिम में यथार्थवादी सोच भी विकसित हुई, जिसकी मान्यता थी कि इंद्रियों द्वारा जो हम देखते और अनुभव करते हैं, वही सत्य है।

विजित देशों की शिक्षा पर इन विचारों और प्रतिमानों का प्रभाव पड़ा। पश्चिम के शिक्षा संबंधी विचारों और प्रतिमानों में सबसे बड़ी कमी यह है कि उनमें वैश्विक एकता का भाव नहीं है, उनमें वर्चस्व का भाव है। (श्यामाचरण दुबे : शिक्षा, समाज और भविष्य) जिन देशों ने उपनिवेश स्थापित किए हों, उनमें वैश्विक एकता की भावना कैसे आ सकती है?

इन विचारों के बीच भारतीय शिक्षा के मूल तत्वों और शिक्षा के भारतीय प्रतिमान को समझना केवल अकादमिक अपरिहार्यता ही नहीं है, अपितु मानव-समाज में शिक्षा की व्यापक और उदार भूमिका को समझने के लिए आवश्यक भी है।

भारतीय शिक्षा, भारतीय दार्शनिक चिंतन से अनुप्राणित है, जो मूलतः आध्यात्मिक है। भारतीय दार्शनिक चिंतन परमसत्ता से स्व के ससीम खंड रूप का तादात्म्य है—साक्षात्कार का रूप। यह साक्षात्कार औपाधिक भेदों का अखंड और पूर्ण सत्ता में एकात्म्य अथवा स्व की पूर्ण स्थिति में परिणति है। इसे ही 'मुक्ति' कहते हैं।

अतः भारतीय दार्शनिक चिंतन की मान्यता है कि व्यक्ति का स्थूल और भौतिक रूप नश्वर और जड़ है। उसका वास्तविक रूप चित् (आत्मा) स्वरूप है। आत्मतत्व अखंड तथा दिगकाल से अविछिन्न और व्यापक है। इसलिए संपूर्ण ब्रह्मांड में एकात्मता का भाव है, सब अभेद और एकरस है। इस रूप में यह चिंतन, जगत की एकता का चिंतन है। यह भेदकारी नहीं, अपितु अभेद और अखंडतावादी है। अतः भारतीय शिक्षा का मूल स्वरूप भी एकात्मतावादी है। यह शिक्षा व्यक्ति-व्यक्ति में, व्यक्ति-प्रकृति में, व्यक्ति-समष्टि में तथा व्यक्ति-परमेष्टि में भेद नहीं करती। पारंपरिक निर्भरता और पूरकता इसका गुण है। प्राचीन समय में इस तत्वज्ञान की प्राप्ति के केंद्र गुरुकुल थे, जहाँ गुरु के साथ शिष्य रहकर शिक्षा अध्ययन करते थे।

ब्रह्मचर्य और नित्यकर्म का पालन इसके अनुशासन थे। राज्य अथवा राजा के हस्तक्षेप से मुक्त गुरुकुल, गुरु की इच्छा के अनुसार चलते थे। प्राचीनकाल में तक्षशिला और नालंदा जैसे

विश्वविद्यालय भी थे, जहाँ अध्ययनरत शिष्यों की संख्या हजारों में थी। विश्वविद्यालय आकार में गुरुकुलों से विशाल थे। विश्व के अन्य देशों के छात्र भी वहाँ अध्ययन के लिए आते थे।

आज शिक्षा में सबसे बड़ा संकट मूल्यों का है। भारतीय शिक्षा मूल्यपरक है। मूल्य शिक्षा का केंद्रीय मर्म है। मूल्य व्यक्ति और उसके सामाजिक जीवन से उद्भूत विचार और व्यवहार के मापक आधार हैं, जिनका निर्धारण समाज की सांस्कृतिक मान्यताओं और दार्शनिक विचारों से होता है। मूल्य ऐसा आधार प्रस्तुत करते हैं, जिनके द्वारा हम उचित-अनुचित का बोध करते हैं। कालांतर में ये मूल्य समाज और व्यक्ति के स्वरूप को निर्मित करते हैं तथा उसकी पहचान बनाते हैं। संस्कृति स्वयं एक मूल्याधारित धारणा है, जिसमें मनुष्य और समाज से जुड़े कर्म और ज्ञान के श्रेष्ठतम मूल्यों पर जोर दिया जाता है और उनका संवर्धन करने की भूमि तैयार की जाती है।

भारतीय शिक्षा मूल्यपरक ही नहीं, संस्कारयुक्त भी है। शिक्षा संस्कार और व्यक्ति के व्यक्तित्व की संकल्पना के साथ जुड़ी है। संस्कारों के साथ शिक्षा का जुड़ाव भारतीय शिक्षा प्रणाली को अन्य शिक्षा प्रणालियों से अलग करता है। पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली संस्कारों पर जोर नहीं देती, वे इसके प्रति तटस्थ हैं। उनकी शिक्षा में संस्कारों की वह अवधारणा नहीं है जो हमारे यहाँ है। संस्कार व्यक्ति के सांस्कृतिक उन्नयन के साथ जुड़े रहते हैं। प्रायः आम भारतीय संस्कारित व्यक्ति को निरे शिक्षित व्यक्ति से अधिक श्रेष्ठ माना जाता है।

संस्कार की तात्विक और मनोवैज्ञानिक विवेचना न करते हुए सामान्य व्यवहार में यह कहा जा सकता है कि संस्कार व्यक्ति के स्वभाव, व्यवहार, पसंद-नापसंद तथा परिस्थितिजन्य अवसरों पर व्यक्ति की प्रतिक्रिया के तौर-तरीकों और स्वरूप को सुनिश्चित करने वाले, संचित मानसिक घटक हैं, जो व्यक्ति की मानसिक बनावट और व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इस रूप में संस्कार का अर्थ है, मानव के जीवन के उन्नयन के लिए निर्धारित मूल्यों के अनुसार जीवन को ढालने की विधि का क्रियान्वयन। शिक्षा व्यक्ति को संस्कारित करने की प्रक्रिया है। छात्र में नैतिक मूल्यों के प्रति सम्मान भाव, चारित्रिक, पवित्रता और आचरण की शुद्धता को विकसित करने के लिए व्यक्ति की मानसिक और व्यावहारिक तैयारी में संस्कारों की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके लिए संस्कारयुक्त आचार्यों के महत्व को भी स्वीकार किया गया है।

शिक्षा व्यक्ति में प्रतिबद्धता और सामाजिकता को विकसित करती है। शिक्षा की प्रतिबद्धता, सद्जीवन के साथ-ही-साथ अच्छे समाज, राष्ट्र तथा मानवता के लिए भी है। यदि शिक्षा प्रतिबद्धता नहीं होगी तो वह मूल्यों का संरक्षण नहीं कर सकेगी। राष्ट्रीय हितों और मानवता का संवर्धन नहीं कर सकेगी। स्वतंत्र भारत में यदि शिक्षा को प्रजातांत्रिक मूल्यों के प्रति आस्था विकसित करनी है तो उसे प्रतिबद्ध होना होगा। इसी प्रकार समाज सेवा और सामाजिकता के भाव को विकसित करने में शिक्षा की अहम भूमिका है। शिक्षा यदि जीवन में सामाजिकता पैदा नहीं करती तो उसकी कोई सामाजिक उपयोगिता नहीं है।

वर्तमान शिक्षा की आलोचना का बहुत बड़ा कारण यह है कि व्यक्तिगत होती जा रही है। शिक्षा अच्छे करिअर के लिए छात्र को योग्य बना रही है, प्रतियोगी भावना विकसित कर रही है, पर छात्र में सामाजिक दृष्टि, सामाजिक सोच और समाज के प्रति कर्तव्यों को विकसित नहीं कर पा रही है। यह शिक्षा का अधूरापन है। प्रतिबद्धता और समाजोन्मुखी जीवन भारतीय शिक्षा की पहचान है। जब हम समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को जानेंगे, तब हम अपनी सीमित सोच और जीवन के छोटे से दायरे से बाहर निकल सकेंगे। शिक्षा की ग्राह्यता व्यक्तिगत है, पर उसके कारण विकसित गुण, शक्ति और सामर्थ्य का प्रयोग समाजपरक है। यदि ऐसा नहीं होता है और व्यक्ति शिक्षा द्वारा प्राप्त शक्ति और सामर्थ्य का प्रयोग स्वयं अपने लिए करता है, तब वह व्यक्ति स्वार्थी, स्वकेंद्रित और समाज के लिए भार बन जाता है और यह बहुत बड़ी सीमा तक आज की त्रासदी भी है। शिक्षा मुक्ति का मार्ग है। लोक कल्याण हेतु मानवमात्र के हित के लिए ज्ञान के विस्तार का विचार भारतीयों के संस्कार में है। ज्ञान ही भय, दुख, शोक, दारिद्रय और अभाव से मुक्ति दिलाता है, इसलिए ज्ञान को मनुष्य की आध्यात्मिक प्रकृति माना है। ज्ञान मनुष्य के अंदर ही है। भारतीय आत्मा को ब्रह्म का अंश मानते हैं और ब्रह्म का स्वरूप चैतन्य है। अतः आत्मा का स्वरूप भी चेतना है, सब ज्ञान इसी में है। इस चेतना पर जो अज्ञान का आवरण छा गया है, शिक्षा उसे अलग करने का कार्य करती है। हमें ऐसी शिक्षा चाहिए जो ज्ञान की ओर ले जाए, मुक्ति की ओर ले जाए। इसलिए कहा गया है, “सा विद्या या विमुक्तये” अर्थात विद्या वह है, जो मुक्ति दिलाए।

शिक्षा जब व्यक्ति से जुड़ती है, तो वह स्वाभाविक रूप से उसके व्यक्तित्व से भी जुड़ती है, भारतीय शिक्षा व्यक्तित्व को गढ़ती है। सामान्यतः व्यक्तित्व को व्यक्ति के स्वभाव, मनोदेहिक गुण-धर्मों, विशेषताओं, न्यूनताओं आदि का समुच्चय माना जाता है। आधुनिक पाश्चात्य विचार संदर्भ में व्यक्तित्व व्यक्ति की आंतरिक और बाह्य शक्तियों का घनीभूत रूप है, पर व्यक्तित्व के संबंध में भारतीय संकल्पना व्यापक है, भारतीय चिंतन में व्यक्तित्व को जीवात्मा का रूप माना है। व्यक्ति का व्यक्तित्व पंचकोष का संश्लिष्ट रूप है, ये पाँच कोष हैं—अन्नमयकोष, प्राणमयकोष, मनोमयकोष, विज्ञानमयकोष और आनंदमयकोष। कोष को ‘आवरण’ भी कह सकते हैं। शिक्षा की भूमिका इन पाँच आवरणों को, ज्ञान द्वारा समझते हुए क्रमशः हटाने की तथा अंततः आनंदमयकोष को उद्घाटित करने की है। आनंदमयकोष ही सत्चित आनंद की अनुभूति है, यही विराट का साक्षात्कार है और इसकी अनुभूति ही व्यक्ति के व्यक्तित्व की पूर्णता है।

भारतीय शिक्षा के मूल तत्व और शिक्षा प्रतिमान आज की प्रासंगिकताएँ हैं। उन्हें बनाए रखते हुए यदि हम शिक्षा का अपना आज का प्रासंगिक प्रतिमान विकसित करना चाहते हैं जो विकसित हो भी रहा है तो हमें एंग्लो-अमेरिका सांस्कृतिक प्रभाव और वामपंथी सोच से बाहर निकलना होगा। साथ ही, भारतीय शिक्षा को अपनी अंतर्निहित विशेषताओं के रक्षण और विकास के लिए वर्तमान की समसामयिक शैक्षिक धाराओं के साथ संवाद और उसके उज्ज्वल पक्षों को समझते हुए अपनी पहचान को बनाए रखने की क्षमता विकसित करनी होगी।

(प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा)
प्रधान संपादक, **पुस्तक संस्कृति**

शहीद स्मारक व स्वतंत्रता संग्राम शोध केंद्र

सन् 1983 में 'लखनऊ मांटेसरी इंटर कॉलेज' का प्रबंधन शिव वर्मा व चन्द्र दत्त तिवारी को सौंपकर दुर्गा भाभी ने अपने पुत्र शचीन्द्र के पास गाजियाबाद जाने का निर्णय ले लिया। दुर्गा भाभी के जाने के बाद उनके निवास स्थान के उपयोग का सवाल सामने आ गया। शिव वर्मा और चन्द्र दत्त तिवारी, दोनों ने मिलकर यहाँ 'शहीद स्मारक व स्वतंत्रता संग्राम शोध केंद्र' बनाने का निर्णय लिया। आजादी के बाद भारत के स्वतंत्रता संग्राम का जो भी इतिहास लिखा जा रहा था, उसमें धर्मनिरपेक्ष क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास को मात्र हाशिये पर ही स्थान दिया जा रहा था। भारत की भावी पीढ़ियों को उन क्रांतिकारियों के संघर्षों व आत्म-बलिदानों को भी जानने का हक था। इसीलिए शिव वर्मा के सभापतित्व में 22 मई, 1983 को कॉलेज के प्रांगण में स्थित दुर्गा भाभी के निवास स्थान पर आयोजित एक बैठक में 'शहीद स्मारक व स्वतंत्रता संग्राम शोध केंद्र' स्थापित कर दिया गया। इस बैठक में शिव वर्मा के अतिरिक्त श्रीमती प्रकाशवती पाल, श्री धर्मवीर चोपड़ा, श्री अशोक नाथ वर्मा, श्री सरदार सिंह, विद्यालय के कला अध्यापक स्व. श्री विजय चक्रवर्ती, 'स्वतंत्र भारत' के पूर्व संपादक श्री चन्द्रोदय दीक्षित, 'नवजीवन' के पूर्व संपादक श्री कृष्ण कुमार, उत्तर प्रदेश सी.पी.एम. के महामंत्री श्री शंकर दयाल तिवारी, श्री जयदेव कपूर, श्री उमेश चन्द्र तथा विद्यालय के तत्कालीन प्रबंधक श्री चन्द्र दत्त तिवारी उपस्थित थे।

डॉ. रश्मि कुमारी

डॉ. रश्मि कुमारी ने 'उत्तर प्रदेश के स्वतंत्रता आंदोलन में शाहजहाँपुर के क्रांतिकारियों का योगदान' विषय पर शोध तथा '1857 के विद्रोह के दौरान उत्तर-पश्चिम प्रांत में मृत्युदंड प्राप्त विद्रोहियों का सामाजिक दस्तावेजीकरण, 1857-60' विषय पर पोस्ट-डॉक्टरेट फेलोशिप प्राप्त की है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास से उनकी पुस्तक '1857 का महाविद्रोह व मौलवी अहमदउल्लाह शाह', 'काकोरी से पहले, काकोरी के बाद' के अलावा उनके कई शोध-पत्र प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं।

संप्रति : राजभाषा विभाग, हिंदुस्तान पेट्रोलियम, मुंबई।

संपर्क : ईमेल— kumari.rashmi1979@yahoo.in

इस पहली बैठक में शिव वर्मा को प्रधान, प्रकाशवती पाल व जयदेव कपूर को उप-प्रधान, चन्द्र दत्त तिवारी, सरदार सिंह व कृष्ण कुमार को मंत्री तथा धर्मवीर चोपड़ा, अशोक नाथ वर्मा, विजय चक्रवर्ती, चन्द्रोदय दीक्षित व उमेश चन्द्र को सर्वसम्मति से सदस्य मनोनीत किया गया। इस कार्यकारिणी में शंकर दयाल तिवारी, पारस नाथ मिश्र, रॉबिन मित्र तथा राशू सैनियाल को स्थायी रूप से आमंत्रित सदस्य बनाया गया। 22 अप्रैल, 1984 को इस कार्यकारिणी की बैठक में आगामी मार्च 1985 में इसके उद्घाटन समारोह का प्रस्ताव पारित किया गया। इसके आयोजन के लिए प्रो. कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव, कृष्ण कुमार मिश्र, चन्द्रोदय दीक्षित तथा सलाउद्दीन उस्मान की एक चार सदस्यीय समिति बनाई गई। इसी मध्य इस शोध केंद्र का पंजीयन हो गया, जिसकी सूचना कार्यकारिणी की 10 अगस्त, 1985 की बैठक में दी गई। इसके बाद जो नई कार्यकारिणी समिति बनी, उसमें शिव वर्मा को प्रधान, दुर्गा देवी वोहरा, सरदार सिंह व प्रकाशवती पाल को उप-प्रधान, जयदेव कपूर, पी.डी. श्रीमाली व चन्द्र दत्त तिवारी को प्रधानमंत्री, धर्मवीर चोपड़ा को कोषाध्यक्ष तथा डॉ. साधन बोस, उमेश चन्द्र, कृष्ण कुमार, चन्द्रोदय दीक्षित, विजय चक्रवर्ती व अशोक नाथ वर्मा को सदस्य तथा ठाकुर राम सिंह को सदस्य बनाया गया।

शहीद स्मारक में शहीदों की तस्वीरों की एक चित्र-दीर्घा के निर्माण की जिम्मेदारी विद्यालय के सेवानिवृत्त कला अध्यापक विजय चक्रवर्ती ने सँभाली। विजय चक्रवर्ती का अपना कोई रक्त-संबंधी नहीं था और

उनके गले में कैंसर होने के कारण ऑपरेशन द्वारा एक नली लगा दी गई थी। इसके कारण वे स्पष्ट रूप से बोलने में भी असमर्थ थे। विजय चक्रवर्ती ने शहीदों के चित्रों का निर्माण कार्य प्रारंभ कर दिया। शहीदों के लगभग 200 चित्र बनाने वाले उस बेनाम कलाकार की विशेषता यह थी कि उन्होंने इसके लिए न किसी प्रकार का मानदेय लिया और न ही शहीदों की इन तस्वीरों पर अपना नाम लिखना ही

स्वीकार किया। उनका कहना था कि शहीदों की इन तस्वीरों पर मैं अपना नाम कैसे लिख दूँ? इन तस्वीरों को बनाने के लिए विजय चक्रवर्ती तमाम पुस्तकों, स्मारिकाओं व अन्य स्रोतों से शहीदों की तस्वीरों को खोजने व उसके आधार पर पेंटिंग बनाने का असंभव-सा लगने वाला कार्य अक्तूबर 1991 में अपनी मृत्यु होने तक करते रहे थे। आज शहीदों की ऐसी मानव-निर्मित चित्र-दीर्घा पूरे देश में कहीं नहीं है।

शहीद स्मारक व शोध केंद्र के निर्माण के लिए सबसे आवश्यक था, धन की व्यवस्था करना। इसके लिए शिव वर्मा ने 5,000 रुपये और 400 पुस्तकों के दान से इस अभियान का श्रीगणेश किया। इसके बाद चन्द्र दत्त तिवारी (5,400 रुपये), हेमवती नन्दन बहुगुणा (10,000 रुपये), महंत इंद्रेश चरण दास, देहरादून (10,000 रुपये), राजेन्द्रपाल सिंह वारियर, मेरठ (5,000 रुपये), श्री उमेशचन्द्र एडवोकेट, लखनऊ (5,000 रुपये), सरदार राजेन्द्र सिंह, लखनऊ (5,000 रुपये), श्री शक्तिधर पाण्डेय, बंबई (5,000 रुपये), मारवाड़ी चेरिटेबल सोसाइटी, कमला टावर, कानपुर (5,000 रुपये) ने भी संस्थान के लिए दान देकर इसके काम को आगे बढ़ाने का रास्ता साफ कर दिया। उसी समय पूना में डॉ. दिवेकर ने सावरकर शोध संस्थान के लिए अंडमान निर्वासित क्रांतिकारियों का एक सम्मेलन आयोजित किया, जिसमें भाग लेने के लिए शिव वर्मा भी गए। इस यात्रा के दौरान बंबई की सी.पी.एम. कमिटी ने आपस में चंदे के रूप में 20,275 रुपये की सहयोग राशि एकत्रित की। शहीद स्मारक व शोध केंद्र के उद्घाटन का समय निश्चित किया गया—09 सितंबर, 1987, क्योंकि उस दिन के लिए उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री नारायण दत्त तिवारी की सहमति प्राप्त हो गई थी। फलस्वरूप, आर्थिक संसाधनों को एकत्रित करने के लिए एक स्मारिका निकालने का निर्णय लिया गया। इसके प्रकाशन के लिए एक समिति का गठन किया गया, जिसमें प्रो. के.सी. श्रीवास्तव (भैया जी), कृष्ण कुमार, पी.डी. श्रीमाली, सलाउद्दीन उस्मान व डॉ. प्रमोद कुमार को सदस्य बनाया गया। उसके कुछ दिन बाद ही एक समारोह में शिव वर्मा की मुलाकात उद्योगपति संजय डालमिया से हो गई, जिन्होंने डालमिया सेवा ट्रस्ट की तरफ से इस स्मारक व शोध केंद्र के रख-रखाव के लिए 30,000 रुपये प्रति वार्षिक की सहायता देने का आश्वासन दिया और उसकी पहली किस्त भी मई 1988 में प्राप्त हो गई।

सन् 1988 में ही शोध केंद्र के पुस्तकालय के लिए सुश्री आशा श्रीवास्तव की पुस्तकालयाध्यक्षा के रूप में नियुक्ति कर दी गई। साथ-ही-साथ जय प्रकाश व डॉ. प्रमोद कुमार को नई कार्यकारिणी में मंत्री बना दिया गया। इस पुस्तकालय के कक्ष निर्माण के लिए

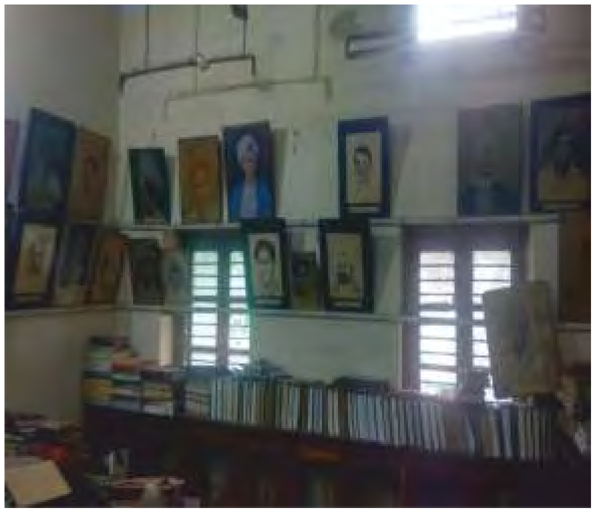

24 मार्च, 1990 को डॉ. पुष्पा तिवारी ने 35,000 रुपये का दान दिया। लंदन की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के साथियों ने शिव वर्मा को लंदन आमंत्रित किया। लौटते समय लंदन के उन साथियों ने इंडियन वर्कर्स एसोसिएशन एंड मैनेजमेंट कमिटी, लंदन की ओर से शहीद स्मारक के लिए एक हजार पाउंड जमा कर दान स्वरूप शिव वर्मा को प्रदान किए थे। 1991 में लंदन से लौटने के बाद उन्होंने शहीद स्मारक के लिए धन की व्यवस्था करने हेतु मुंबई की एक और यात्रा की। निवासियों ने भी इस अवसर पर सहयोग कर शहीद स्मारक के लिए 10,000 रुपये की राशि एकत्रित की थी। मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव ने इसके पुस्तकालय के लिए उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 2,00,000 रुपये का दान दिया। इस दानराशि से तमाम पुस्तकें क्रय कर एक समृद्ध पुस्तकालय का निर्माण संभव हुआ। इस

पुस्तकालय में अब इतिहास की महत्वपूर्ण पुस्तकों के अतिरिक्त क्रांतिकारी आंदोलन व स्वतंत्रता संग्राम पर आधारित पुस्तकें, दस्तावेज, क्रांतिकारियों के निजी दस्तावेज, तमाम षड्यंत्रों के दस्तावेज जैसी दुर्लभ सामग्रियाँ उपलब्ध थीं।

इस शोध केंद्र की एक और महत्वपूर्ण उपलब्धि अंडमान निर्वासित क्रांतिकारियों का इतिहास लेखन भी है, जिसे 'काला पानी : अंडमान की दंडी बस्ती' के नाम से राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली ने और 'हंगर स्ट्राइक इन अंडमान' के नाम से अन्य प्रकाशक ने प्रकाशित किया है। यहाँ निरंतर आते रहने वाले जिन क्रांतिकारियों के अनुभवों को 1987 से 1994 तक रिकॉर्ड करने का कार्य किया गया था, उसे न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय के रैंडफोर्ड एसोसिएट ने डिजीटाइज करने का कार्य 2010 में किया।

पुस्तकालय निर्माण के साथ-साथ अब तक क्रांतिकारी आंदोलन पर शोध कार्य भी प्रारंभ हो गया। 1991 और 1994 में इसे अंडमान के स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के अनुभवों के दस्तावेजीकरण व मौखिक इतिहास के लेखन हेतु भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली से शोध अनुदान भी प्राप्त हो गया। इस अनुदान से अंडमान के जीवित क्रांतिकारियों के साक्षात्कारों को संकलित करने का कार्य प्रारंभ हो गया। उन दुर्लभ दस्तावेजों व अभिलेखों के संरक्षण हेतु 30 जनवरी, 1994 को भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली ने भी 10,000 रुपये का अनुदान दिया। 10 जनवरी, 1997 को 93

वर्षीय शिव वर्मा तथा 08 फरवरी, 2008 को चन्द्र दत्त तिवारी का निधन हो गया। शिव वर्मा के बाद इसके अध्यक्ष सरदार भगत सिंह के सहोदर श्री कुलतार सिंह रहे और चन्द्र दत्त तिवारी के बाद महामंत्री का पद डॉ. पुष्पावती तिवारी ने सँभाला। वर्तमान में इसके अध्यक्ष डॉ. बैजनाथ सिंह व महामंत्री डॉ. पुष्पावती तिवारी हैं। शोध केंद्र के पुस्तकालयाध्यक्ष के पद पर कुमारी आशा श्रीवास्तव के बाद अशोक मिश्रा, कुमारी पूजा सक्सेना, अनुराग सक्सेना की नियुक्ति की गई। वर्तमान में यह कार्य सचिन गुप्ता कर रहे हैं, जिन्हें शोध केंद्र की तरफ से सरदार भगत सिंह मेमोरियल छात्रवृत्ति भी प्राप्त होती है।

इसके शोध केंद्र में शोधार्थियों को दो छात्रवृत्तियाँ—कामरेड शंकर दयाल तिवारी मेमोरियल व डॉ. सुशीला तिवारी मेमोरियल प्रदान की जाती हैं, जिसका वहन डॉ. पुष्पावती तिवारी व समग्र

विकास संस्थान करते हैं। समग्र विकास संस्थान से शोध केंद्र के लिए प्रतिवर्ष 30,000 रुपये की धनराशि प्राप्त होती है। अब तक यहाँ के पुस्तकालय का उपयोग कर दर्जनों शोध छात्रों ने डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की है। इनमें डॉ. नीलम दीक्षित, डॉ. सोनिया लांबा, डॉ. आर.के. सक्सेना, डॉ. रश्मि कुमारी भी सम्मिलित हैं, जिन्हें शोध केंद्र से छात्रवृत्ति प्राप्त होती है।

इस शोध केंद्र की एक और महत्वपूर्ण उपलब्धि अंडमान निर्वासित क्रांतिकारियों का इतिहास लेखन भी है, जिसे 'काला पानी : अंडमान की दंडी बस्ती' के नाम से राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली ने और 'हंगर स्ट्राइक इन अंडमान' के नाम से अन्य प्रकाशक ने प्रकाशित किया है। यहाँ निरंतर आते रहने वाले जिन क्रांतिकारियों के अनुभवों को 1987 से 1994 तक रिकॉर्ड करने का कार्य किया गया था, उसे न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय के रैंडफोर्ड एसोसिएट ने डिजीटाइज करने का कार्य 2010 में किया। इन अनुभवों के आधार पर लिखे गए शोध पत्रों को भारत के अतिरिक्त हॉलैंड व अमेरिका में आयोजित संगोष्ठियों में प्रस्तुत किया गया और उनका प्रकाशन विश्व प्रसिद्ध शोध पत्रिकाओं में भी हुआ है। शोध केंद्र के प्रकाशन विभाग ने भी तमाम पुस्तकों का प्रकाशन किया है। इसके साथ ही शिव वर्मा की पुस्तकों—'संस्मृतियाँ' व 'मौत के इंतजार में' को राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने भी प्रकाशित किया है।

असमिया भाषा का इतिहास

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की श्रृंखला में पूर्वी सीमा पर अवस्थित असम की भाषा को 'असमी', 'असमिया' अथवा 'आसामी' कहा जाता है। 'असमिया' भारत के असम प्रांत की आधिकारिक भाषा तथा असम में बोली जाने वाली प्रमुख भाषा है। इसको बोलने वालों की संख्या डेढ़ करोड़ से अधिक है।

भाषाई परिवार की दृष्टि से इसका संबंध आर्य भाषा परिवार से है। बांग्ला, मैथिली, उड़िया और नेपाली से इसका निकट संबंध है। ग्रियर्सन के वर्गीकरण की दृष्टि से यह बाहरी उपशाखा के पूर्वी समुदाय की भाषा है। सुनीति कुमार चटर्जी के वर्गीकरण में प्राच्य समुदाय में इसका स्थान है। उड़िया तथा बांग्ला की भाँति असमिया की भी उत्पत्ति प्राकृत तथा अपभ्रंश से ही हुई है।

यद्यपि असमिया भाषा की उत्पत्ति 17वीं शताब्दी से मानी जाती है, किंतु साहित्यिक अभिरुचियों का प्रदर्शन 13वीं शताब्दी में रुद्र कंदलि के द्रोण पर्व (महाभारत) तथा माधव कंदलि के रामायण से प्रारंभ हुआ। वैष्णवी आंदोलन ने प्रांतीय साहित्य को बल दिया। शंकरदेव (1449-1567) ने अपनी लंबी जीवन-यात्रा में इस आंदोलन को स्वरचित काव्य, नाट्य व गीतों से जीवित रखा।

सीमा की दृष्टि से असमिया क्षेत्र के पश्चिम में बांग्ला है। अन्य दिशाओं में कई विभिन्न परिवारों की भाषाएँ बोली जाती हैं। इनमें से तिब्बती, बर्मी तथा खासी प्रमुख हैं। इन सीमावर्ती भाषाओं का गहरा प्रभाव असमिया की मूल प्रकृति में देखा जा सकता है। असमिया एकमात्र बोली नहीं है। यह प्रमुखतः मैदानों की भाषा है।

बहुत दिनों तक असमिया को बांग्ला की एक उपबोली सिद्ध करने का उपक्रम होता रहा है। असमिया की तुलना में बांग्ला भाषा और साहित्य के बहुमुखी प्रसार को देखकर ही लोग इस प्रकार की धारणा बनाते रहे हैं, परंतु भाषा वैज्ञानिकों की दृष्टि से बांग्ला और असमिया का समानांतर विकास आसानी से देखा जा सकता है। मागधी अपभ्रंश के एक ही स्रोत से निःसृत होने के कारण दोनों में समानताएँ हो सकती हैं, पर उनके आधार पर एक-दूसरे की बोली को सिद्ध नहीं किया जा सकता।

क्षेत्रीय विस्तार की दृष्टि से असमिया के कई उपरूप मिलते हैं। इनमें से दो मुख्य हैं—पूर्वी रूप और पश्चिमी रूप। साहित्यिक प्रयोग की दृष्टि से पूर्वी रूप को ही मानक माना जाता है। पूर्वी की अपेक्षा पश्चिमी रूप में बोलीगत विभिन्नताएँ अधिक हैं। असमिया के इन दो मुख्य रूपों में ध्वनि, व्याकरण तथा शब्द-समूह, इन तीनों ही दृष्टियों से अंतर मिलते हैं। असमिया के शब्द-समूह में संस्कृत तत्सम, तद्भव तथा देशज के अतिरिक्त विदेशी भाषाओं के शब्द भी मिलते हैं। अनार्य भाषा परिवारों से गृहीत शब्दों की संख्या भी कम नहीं है। भाषा में सामान्यतः तद्भव शब्दों की प्रधानता है। हिंदी-उर्दू के माध्यम से फारसी,

निशा नंदिनी भारतीय

शिक्षा : एम.ए. (तीन विषय—हिंदी, समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र), बी.एड.।

संप्रति : 30 वर्षों तक शिक्षण कार्य।

लेखन व संपादन : सभी विधाओं में लगभग 35 वर्षों से लेखन, 30 पुस्तकें प्रकाशित, 'मुक्त हृदय' (बाल काव्य संग्रह), अमरावती विश्वविद्यालय महाराष्ट्र में बी.कॉम. प्रथम वर्ष पाठ्यपुस्तक 'गुंजन' में 'प्रयत्न' कविता संकलित। रामपुर, उत्तर प्रदेश; डिब्रूगढ़, असम व दिल्ली आकाशवाणी व दूरदर्शन से परिचर्चा, वार्तालाप, काव्य गोष्ठी, नाटक आदि का प्रसारण।

पुरस्कार व सम्मान : वैश्विक साहित्यिक व सांस्कृतिक महोत्सव इंडोनेशिया और मलेशिया में साहित्य वैभव सम्मान, थाईलैंड के क्राबी महोत्सव में साहित्य वैभव अवार्ड से सम्मानित, विलक्षण संस्था द्वारा हरियाणा में राष्ट्रीय स्तर पर 'विलक्षण समाज सारथी' सम्मान, भारत साहित्य महोत्सव में 'नेपाल-भारत अंतरराष्ट्रीय साहित्य सम्मान'।

संपर्क : मोबाइल— 9435533394

ई-मेल— nishaguptavkv@gmail.com

अरबी तथा पुर्तगाली और कुछ अन्य यूरोपीय भाषाओं के भी शब्द आ गए हैं।

भारतीय आर्यभाषाओं की शृंखला में पूर्वी सीमा पर स्थित होने के कारण असमिया कई अनार्य भाषा परिवारों से घिरी हुई है। इस स्तर पर सीमावर्ती भाषा होने के कारण उसके शब्द-समूह में अनार्य भाषाओं के कई स्रोतों के लिए हुए शब्द मिलते हैं। इन स्रोतों में से तीन अपेक्षाकृत अधिक मुख्य हैं–

1. ऑस्ट्रो-एशियाटिक–खासी, कोलारी, मलायन
2. तिब्बती-बर्मी-बोडो
3. थाई-अहोम

शब्द-समूह की इस मिश्रित स्थिति के प्रसंग में यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि खासी, बोडो तथा थाई तत्व तो असमिया में उधार लिए गए हैं, पर मलायन और कोलारी तत्वों का मिश्रण इन भाषाओं के मूलाधार के पारस्परिक मिश्रण के फलस्वरूप है। अनार्य भाषाओं के प्रभाव को असम के अनेक स्थानीय नामों में भी देखा जा सकता है। ऑस्ट्रिक, बोडो तथा अहोम के बहुत से स्थानीय नाम ग्रामों, नगरों तथा नदियों के नामकरण की पृष्ठभूमि में मिलते हैं। अहोम के स्थान के नाम प्रमुखतः नदियों को दिए गए नामों में हैं।

असमिया लिपि मूलतः ब्राह्मी का ही एक विकसित रूप है। बांग्ला से उसकी निकट समानता है। लिपि का प्राचीनतम उपलब्ध रूप भास्कर वर्मन का 610 ई. का ताम्रपत्र है, परंतु उसके बाद से आधुनिक रूप तक लिपि में 'नागरी' के माध्यम से कई प्रकार के परिवर्तन हुए हैं।

असमिया भाषा का व्यवस्थित रूप 13वीं तथा 14वीं शताब्दी से मिलने पर भी उसका पूर्वरूप बौद्ध सिद्धों के 'चर्यापद' में देखा जा सकता है। 'चर्यापद' का समय विद्वानों ने ईसवी सन् 600 से 1000 के बीच तय किया है। दोहों के लेखक सिद्धों में से कुछ का तो कामरूप प्रदेश से घनिष्ट संबंध था। 'चर्यापद' के समय से 12वीं शताब्दी तक असमी भाषा में कई प्रकार के मौखिक साहित्य का सृजन हुआ था। मणिकोंवर-फुलकोंवर-गीत, डाकवचन, तंत्र-मंत्र आदि इस मौखिक साहित्य के कुछ रूप हैं।

असमिया भाषा का पूर्ववर्ती रूप अपभ्रंश मिश्रित बोली से भिन्न रूप प्रायः 18वीं शताब्दी से स्पष्ट होता है। भाषागत विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए असमिया के विकास के तीन काल माने जा सकते हैं–

पहला, 14वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी के अंत तक। इस काल को फिर दो युगों में विभक्त किया जा सकता है। पहला, वैष्णव-पूर्व युग और दूसरा वैष्णव युग। इस युग के सभी लेखकों में भाषा का अपना स्वाभाविक रूप निखर आया है। यद्यपि कुछ प्राचीन प्रभावों से वह सर्वथा मुक्त नहीं हो सकी है। व्याकरण की दृष्टि से भाषा में पर्याप्त एकरूपता नहीं मिलती। परंतु असमिया के प्रथम महत्वपूर्ण लेखक शंकरदेव (जन्म : 1449) की भाषा में ये त्रुटियाँ नहीं मिलती हैं। वैष्णव-पूर्व युग की भाषा की अव्यवस्था यहाँ समाप्त हो जाती है। शंकरदेव की रचनाओं में ब्रजबुलि प्रयोगों का बाहुल्य है।

दूसरा, 17वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी के प्रारंभ तक। इस युग में अहोम राजाओं के दरबार की गद्य भाषा का रूप प्रधान है। इन गद्य कर्ताओं को 'बुरंजी' कहा गया है। बुरंजी साहित्य में इतिहास लेखन की प्रारंभिक स्थिति के दर्शन होते हैं। प्रवृत्ति की दृष्टि से यह पूर्ववर्ती धार्मिक साहित्य से भिन्न है। बुरंजियों की भाषा आधुनिक रूप के अधिक निकट है।

तीसरा, 19वीं शताब्दी के प्रारंभ से। 1819 ई. में अमेरिकी बपतिस्मा (बैप्टिस्ट) पादरियों द्वारा प्रकाशित असमिया गद्य में बाइबिल के अनुवाद से आधुनिक असमिया का काल प्रारंभ होता है। मिशन का केंद्र पूर्वी असम में होने के कारण उसकी भाषा में पूर्वी असम की बोली को ही आधार माना गया। 1846 ई. में मिशन द्वारा एक मासिक पत्र 'अरुणोदय' प्रकाशित किया गया। 1848 में असमिया का प्रथम व्याकरण छपा और 1867 में प्रथम 'असमिया अंग्रेजी शब्दकोश' तैयार हुआ। श्रीमंत शंकरदेव असमिया भाषा के अत्यंत प्रसिद्ध कवि, नाटककार तथा हिंदू समाज सुधारक थे।

असमिया की पारंपरिक कविता उच्चवर्ग तक ही सीमित थी। भट्टदेव (1558-1638) ने असमिया गद्य साहित्य को सुगठित रूप प्रदान किया। दामोदरदेव ने प्रमुख जीवनियाँ लिखीं। पुरुषोत्तम ठाकुर ने व्याकरण पर काम किया। 18वीं सदी के तीन दशक तक साहित्य में विशेष परिवर्तन दिखाई नहीं दिए। उसके बाद 40 वर्षों तक असमिया साहित्य पर बांग्ला का वर्चस्व बना रहा। असमिया को जीवन प्रदान करने में चन्द्र कुमार अग्रवाल (1858-1938), लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा (1867-1838) व हेमचन्द्र गोस्वामी (1872-1928) का योगदान रहा। असमिया में छायावादी आंदोलन छेड़ने वाली मासिक पत्रिका 'जोनाकी' का प्रारंभ इन्हीं लोगों ने किया था। 19वीं शताब्दी के उपन्यासकार पद्मनाभ गोहाञिबरुवा और रजनीकान्त बरदलै ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। सामाजिक उपन्यास के क्षेत्र में देवाचन्द्र तालुकदार व बीना बरुवा का नाम प्रमुखता से आता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य को मृत्युंजय उपन्यास के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इस भाषा में क्षेत्रीय व जीवनी रूप में भी बहुत से उपन्यास लिखे गए हैं। 40 व 50वें दशक की कविताएँ व गद्य मार्क्सवादी विचारधारा से भी प्रभावित दिखाई देते हैं।

अहोम वंश की मुद्रा जिस पर असमिया लिपि में लिखा गया है। असमिया लिपि 'पूर्वी नागरी' का एक रूप है जो असमिया के साथ-साथ बांग्ला और विष्णुपुरिया मणिपुरी को लिखने के लिए प्रयोग की जाती है। केवल तीन वर्णों को छोड़कर शेष सभी वर्ण बांग्ला में भी ज्यों-के-त्यों प्रयुक्त होते हैं। इस तरह असमिया भाषा का इतिहास बहुत प्राचीन और विस्तृत है।

भाषा एक प्रवहमान नदी

एक जबान से दूसरी जबान पर चढ़ते-चढ़ते शब्दों में ही परिवर्तन नहीं आता, वरन् अर्थ भी बदल जाता है। कुछ शब्दों का अर्थ संकुचित हो जाता है, तो कुछ का विस्तृत। भाषाविज्ञान की सीमा में यह विकार, विकास का ही पर्याय है, न कि ह्रास का। व्याकरण जिस परिवर्तन को पतन या अशुद्धता का नाम देता है, भाषाविज्ञान उसे भी विकास का एक सोपान समझकर ग्रहण करने के पक्ष में है। 'परिवार' शब्द को ही लीजिए। इस शब्द का अर्थ है—घेरने वाला अर्थात नौकर-चाकर, अनुचरवर्ग, चादर, म्यान आदि। यह शब्द अब 'कुटुंब' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। बदमाश (फारसी) शब्द का अर्थ है—बुरी जीविका/पेशा, लेकिन यही शब्द अब 'चरित्रहीन' अथवा 'गुंडागर्दी' करने वाले के लिए इस्तेमाल होता है। बंगाल में इसका प्रयोग 'शरारती' और 'नटखट' के लिए होता है। उत्तर भारत में हम घर के शरारती बच्चों को प्यार से भी 'बदमाश' कह देते हैं। इसी प्रकार बांग्ला शब्द 'दादा' (भाई) हिंदी भाषी क्षेत्र में 'गुंडे' का भी पर्याय बन गया है। 'बला' का मूल अर्थ 'परीक्षा' है। 'परीक्षा' स्वयं में एक कठिन कार्य है, अतः 'बला' का अर्थ परिवर्तित होकर 'मुसीबत' हो गया है, जो अपने मूल शब्द से बहुत दूर जा पहुँचा है। इम्तहान भी मुसीबत का ही पर्याय है, जो परीक्षा का पर्याय बनकर छात्रों की धड़कनें बढ़ाने का काम करता है।

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

जन्म : 19 मार्च, 1949, हरिपुर, जिला सहारनपुर (उत्तर प्रदेश)।

संप्रति : केंद्रीय विद्यालय के प्राचार्य पद से सेवानिवृत्त, वर्तमान में स्वतंत्र लेखन।

प्रकाशन : दो दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के लिए दो पुस्तकों का अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद।

संपादन : कुल 37 संपादित पुस्तकें। laghukatha.com (सुकेश साहनी के साथ लघुकथा की एकमात्र वेबसाइट) के सहयोगी संपादक।

प्रसारण : रेडियो सीलोन; आकाशवाणी—गुवाहाटी, रामपुर, नजीबाबाद, अंबिकापुर एवं जबलपुर, दूरदर्शन हिसार, टैग टी.वी. और सी.एन. (कैनेडा) से।

संपर्क : मोबाइल— 9313727493

ईमेल— rdkamboj@gmail.com

'बावर्ची' शब्द का अर्थ है—विश्वासपात्र। भोजन बनाने का काम उसी को सौंपा जा सकता है, जो विश्वासपात्र हो। विश्वासघाती कब-क्या खिलाकर जान ले ले, कहा नहीं जा सकता। शायद इसी विश्वासपात्रता के कारण रसोई बनाने वाले को 'बावर्ची' का नाम दे दिया। अब तो वह भी बावर्ची है, जो रसोईघर के सामान को भी आँख बचाकर ले भागे।

संस्कृत भाषा का 'वेदना' शब्द 'सुख-दुख' दोनों भावों में प्रयुक्त हो रहा है, परंतु यही शब्द हिंदी में केवल 'पीड़ा' या 'दुख' ही दे रहा है। संस्कृत भाषा का 'घृणा' शब्द दया, तरस, निंदा और नफरत के लिए आता है, लेकिन हिंदी में केवल 'नफरत' तक सीमित हो गया है। हिंदी का शब्द 'दूल्हा' दुर्लभ से विकसित है। अच्छा पति मिलना दुर्लभ तो है ही, ढूँढ़ना भी मुश्किल है, पहले भी रहा होगा। कठिनता से प्राप्य होने के कारण दुर्लभ ही 'दूल्हा' बन गया। आज यह शब्द 'वर' के लिए प्रयुक्त होने लगा है।

संस्कृत में 'साहस' शब्द व्यभिचार, हत्या, लूटपाट, दुराचार आदि दुष्कर्मों के लिए प्रयुक्त होता रहा है। ऐसे कार्यों के लिए विशेष हिम्मत की जरूरत पड़ती है। शायद इसीलिए अच्छे एवं कठिन कार्यों को करने के लिए भी जिस शक्ति की आवश्यकता पड़ी, उसे भी 'साहस' का नाम दे दिया। आज यह शब्द अपने मूल अर्थ से एकदम परिवर्तित अर्थ का द्योतक बन गया है।

'बज्रबटुक' (बज़्रबटुक) दो शब्दों से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है पक्का (नैष्ठिक) ब्रह्मचारी। अब यह बदलकर बन गया है—'बजरबट्टू' जिसका अर्थ 'महामूर्ख व्यक्ति' होता है। ऐसा ही एक शब्द है 'बौद्ध', जिसका मूल अर्थ आज भी ज्यों का त्यों बरकरार है अर्थात बुद्ध का अनुयायी। दूसरी ओर बुद्ध का एक विकृत और परिवर्तित शब्द बन गया 'बुद्धू', जिसका अर्थ हो गया अज्ञानी। कितनी भिन्नता हो गई दोनों शब्दों में। 'भद्र' (भला, कल्याण, शुभ) 'सर्वे भद्राणि पश्यन्तु' का वाचक था, इससे परिवर्तित शब्द 'भद्दा' बन गया, जिसका अर्थ मूल शब्द से कोसों दूर हो गया, लेकिन भद्र व्यक्ति के रूप में अपना पहला अर्थ (भला) अभी बचाए हुए है।

हिंदू शब्द भी काफी विवादास्पद है। प्राचीन ईरानी साहित्य में 'हिन्दु' शब्द 'नदी' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। कुछ विद्वानों ने खींच-तानकर इसकी संस्कृत व्युत्पत्ति भी कर डाली है—

1. हिनूदुषूडु (प्रत्यय) = हीनों को दूषित करने वाला
2. यो हिंसाया दूयते सः हिन्दू
3. हिनूदु = दुष्टों का विनाश करने वाला।

अब विचार करें, तो इसका अर्थ बहुत व्यापक हो गया है। यह किसी व्यक्ति विशेष का पर्याय न होकर विशाल धर्म का नाम है। अगर और भी विस्तार में पहुँचा जाए तो 'हिंदुस्तान' जैसे विशाल देश के निवासी का पर्याय बन गया है। कुछ ऐसे भी शब्द हैं जो विदेशी भाषा से गृहीत होने पर भी ज्यों के त्यों सुरक्षित हैं। असीरियन शब्द 'असुर' ईरानी में 'अहुर' हो गया ('अहर' नहीं, जैसा कि 'मुक्ता' में दिए गए एक लेख में बताया गया था।), जो संस्कृत में अपने मूल रूप में ही सुरक्षित है। मजे की बात यह है कि वहाँ असीरियन में यह 'देवता' का सूचक है। असुर शब्द 'असु' का अर्थ 'प्राण', और 'र' का अर्थ 'वाला' यानी प्राणवान् अथवा शक्तिमान, से मिलकर बना है। असु सम—प्राणों के समान प्यारा। 'सुर' शब्द इसी उदात्त अर्थ में पारसियों के प्रधान देवता 'अहुरमज़्द' (असुर : मेधावी) के नाम से विद्यमान है। बाद के समय में धीरे-धीरे असुर भौतिक शक्ति का प्रतीक हो गया। देवताओं से विरोध होने पर यह राक्षस के रूप में तथा इसके विलोम के रूप में 'सुर' का प्रयोग होने लगा। ऋग्वेद में 90 बार इस शब्द का प्रयोग 'अच्छे' अर्थ में तथा केवल 15 बार देवताओं के शत्रु के रूप में किया गया है।

ऐसा ही फारसी शब्द 'मिहिर' (सूर्य) है, संस्कृत में शब्द एवं अर्थ दोनों ही रूप से ज्यों का त्यों है। इसी प्रकार कदली (केला), बाण, ताम्बूल, पिनाक, लिंग आदि ऑस्ट्रिक शब्द संस्कृत में मूल रूप में इस प्रकार समा गए हैं कि आज इन्हें किसी अन्य भाषा का बताना अटपटा लगेगा। एक मुख्य बात और, 'लिंग' का एक ही रूढ़ अर्थ नहीं है, जिसे हम शरीर के एक अंग के रूप में ही समझते हैं। इसके विभेदक चिह्न, निशान, चिह्न, प्रतीक, देवमूर्ति, प्रतिमा, आलिंगन आदि कई अर्थ हैं। जब हम 'शिवलिंग' शब्द का प्रयोग करते हैं, तो वह शिव की मूर्ति, शिव का प्रतीक या शिव का चिह्न है, शिव का अंग विशेष नहीं है। पारसियों का आगमन भारत में काफी बाद में हुआ, लेकिन उनका 'पाषंड' धार्मिक कर्मकांड के साथ संस्कृत में भी रहा, कर्मकांड का दिखावा होने के कारण यह नास्तिक, धर्मभ्रष्ट आदि अर्थ के साथ हिंदी में केवल 'पाखंड' अर्थात आडंबर का रूप बनकर रह गया।

पहले पंख से लिखा जाता था। 'पेन' शब्द का प्रयोग इसी शब्द के साथ होता रहा। रूढ़ होने पर पेन अपने मूल अर्थ से दूर चला आया है। 'जंघा/जङ्घा' संस्कृत का मूल अर्थ है—घुटने से लेकर टखने के बीच का भाग अर्थात 'पिंडली'। हिंदी में इसका अर्थ घुटने से ऊपर का भाग है। इसी प्रकार 'कटि' (संस्कृत) का अर्थ कूल्हा है, जो हिंदी में कमर हो गया। ब्रज बोली में इसका प्रयोग मूल अर्थ 'कूल्हा' के लिए भी हुआ है। 'पदवी'/'पद्धति' का अर्थ है—रास्ता। हिंदी में पदवी तो उपाधि हो गया और पद्धति तौर-तरीके के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। इसी प्रकार प्रणाली (संस्कृत : नाली) हिंदी में पद्धति का पर्याय बन गया। 'निर्भर' (संस्कृत : पूर्ण रूप से भरा हुआ) हिंदी में आश्रित का पर्याय बन गया। 'त्रुटि' (संस्कृत में टूट या टूटना) हिंदी में 'भूल' के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

'अधर' का अर्थ है नीचे का, नीच, कमीना, अधरोष्ठ अर्थात निचला होंठ, हिंदी में केवल 'होंठ' के रूप में विद्यमान है। महाराज (बड़ा राजा) हिंदी में रसोइया, संग्रह (रक्षण) हिंदी में केवल एकत्र करना, संपादक (प्राप्तकर्ता) हिंदी में एडिटर के अर्थ में, समाचार (अभ्यास, आचरण, व्यवहार) हिंदी में केवल ख़बर (फिर ख़बर से ही अख़बार भी बन गया), अकाल (असमय) हिंदी में दुर्भिक्ष भी, इसलिए कि इस विषम समय में भिक्षा मिलना भी दुर्लभ है।

दारुण (संस्कृत) भीषण, घोर, भयानक, भयंकर आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है, लेकिन बांग्ला में 'बहुत' अर्थ के साथ 'अच्छे-बुरे' दोनों ही अर्थ में प्रयुक्त होता है। बहुत अच्छे के लिए 'दारुण भालो' कहा जाता है। यहाँ हिंदी का सामान्य शब्द 'बाल' सिर के बालों के लिए प्रयुक्त नहीं होता। 'आमूलचूल' में 'चूल' सिर के केश के लिए बांग्ला में प्रयुक्त होता है। किसी नाई से 'बाल कटवाने हैं' कह देंगे, तो वहाँ कहा-सुनी हो जाएगी। केश अगर घुँघराले हों, तो उन्हें 'अलकें' ही कहा जाएगा। जयशंकर प्रसाद भी इड़ा के सौंदर्य के लिए 'बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल' का चित्रण करते हैं। संस्कृत का राग (प्रेम, हर्ष, आनंद, क्रोध, रोष, संगीत के राग आदि) हिंदी में रोष/क्रोध के अर्थ में प्रयोग नहीं होता। बांग्ला में यह शब्द क्रोध के रूप में भी प्रयोग होता है। ये परिवर्तन केवल बांग्ला तक ही सीमित नहीं हैं।

"वास्तविकता तो यह है कि शब्द की स्वतंत्र सत्ता नहीं है। जैसे-जैसे कोई समाज उन्नति करता जाता है, उसके अनुरूप शब्दों के रूप और अर्थ में भी परिवर्तन होता जाता है। नए-नए विचारों को प्रकट करने के लिए जब पुराने ही शब्द प्रयुक्त होते हैं, तब उनके अर्थ में परिवर्तन होगा ही। 'गवेषणा' का अर्थ–गौ को ढूँढ़ना, गौ की इच्छा (एषणा) था, बाद में इसका अर्थ 'ढूँढ़ना' हो गया।"

'महक' खुशबू के अर्थ में प्रचलित है, लेकिन उत्तर प्रदेश और बिहार के कुछ स्थानों पर महकना का अर्थ बदबू है, जैसे–जूते से निकाली जुराबों का महकना। 'सड़ना' जहाँ होगा, तो बदबू भी जरूर आएगी। तवे पर पड़ी रोटी पर कुछ देर तक ध्यान न जाए, तो वह जल जाएगी, लेकिन पंजाबी में जलेगी नहीं, सड़ जाएगी। असमिया में दूध के लिए गोखीर (गौ क्षीर और गाय के दूध से परिवर्तित, भैंस मैंने वहाँ देखी ही नहीं) का प्रयोग होता है। दूध तो केवल माँ अपने शिशु को पिला सकती है। तेलुगु में उपन्यास–मु (भाषण), कृषि (परिश्रम), चरित्र-मु (इतिहास), व्यवसाय-मु (खेती), शिक्षा (सजा-कन्नड़, मलयालम और तमिल में भी), राष्ट-मु (राज्य), भाषण (बातचीत) के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। 'कुद' का अर्थ उड़िया में 'नदीय' है। 'हीराकुद' बेचारा लोगों की जुबान पर जाकर 'हीराकुंड' हो गया।

किसी भी प्राचीन ग्रंथ का अध्ययन करते समय उसके मूल अर्थ में पहुँचने की जरूरत है। वास्तविकता तो यह है कि शब्द की स्वतंत्र सत्ता नहीं है। जैसे-जैसे कोई समाज उन्नति करता जाता है, उसके अनुरूप शब्दों के रूप और अर्थ में भी परिवर्तन होता जाता है। नए-नए विचारों को प्रकट करने के लिए जब पुराने ही शब्द प्रयुक्त होते हैं, तब उनके अर्थ में परिवर्तन होगा ही। 'गवेषणा' का अर्थ–गौ को ढूँढ़ना, गौ की इच्छा (एषणा) था, बाद में इसका अर्थ 'ढूँढ़ना' हो गया। कुश घास को उखाड़ने में सावधानी चाहिए, इसलिए कुशल (कुशान् लातीति अर्थात कुश+ला (उखाड़ना)) का अर्थ योग्य, दक्ष, चतुर हो गया। वीणा बजाना भी आसान नहीं, इसलिए वही गति प्रवीण (प्रकृष्टा संसाधिता वीणा येन) के अर्थ चतुर, कुशल, जानकार हो गए। 'मृग' का अर्थ हिरन के साथ-साथ 'पशु' भी है, तभी सिंह मृगराज (हिरनों का राजा नहीं, बल्कि पशुओं का राजा) कहलाता है। शिकार के लिए 'मृगया' बन गया। कन्नड़, तेलुगु और तमिल में मृग का अर्थ केवल जानवर है। तिलों से तेल निकाला जाता था, इसलिए 'तैल'/'तेल' हो गया। सूरजमुखी, सरसों हो या बिनौला इन सबके तेलों के साथ अब तो मिट्टी का तेल भी है।

'अभ्यास' शब्द बाण आदि को बार-बार फेंकने के अर्थ (अभि+आ+अस्+घञ्) में आया है। ऋग्वेद के मंत्र–'शूरो अस्तेन शत्रून् बाधते' में 'अस्ता' का अर्थ बाण फेंकने वाला ही है, जो अब लगातार किसी कार्य को करने के उपलक्ष्य में ही आता है। अनजाने में कुछ लोग उपलक्ष्य के लिए भी उपलक्ष (लक्ष अर्थात लाख) लिख जाते हैं। 'अरि' शब्द का अर्थ वैदिक संस्कृत में ईश्वर, धार्मिक, शत्रु है। लौकिक संस्कृत में यह शब्द अब शत्रु का पर्याय हो सीमित अर्थ का बोध कराता है। इसी प्रकार 'क्षिति' (घर, बस्ती, मनुष्य) लौकिक संस्कृत में 'पृथ्वी' है। ये शब्द भी देखिए–

1. अवसर, आलोचना, केवल–तमिल में क्रमशः (जल्दी, सलाह, नीच), विज्ञापन, संभव, पाषाण–कन्नड़ में क्रमशः (प्रार्थना, घटना, विष) (गवेषणा-मार्च 1966, पृष्ठ : 73-विजय राघव रेड्डी)
2. नीरस, तालीम, शिकार, संगति, लोटा–तेलुगु में क्रमशः (कमजोर, व्यायाम, सैर, समाचार, गिलास) (गवेषणा-मार्च, 1966, पृष्ठ : 106-तेजनारायण लाल)
3. उद्योग, प्रपंच, खिलाड़ी (हिंदी में प्रयत्न, धोखा, खेलने वाला) तेलुगु, कन्नड़, मलयालम और तमिल में क्रमशः (नौकरी, दुनिया, बदमाश–कन्नड़ में चालाक) (गवेषणा-मार्च 1966, पृष्ठ : 121-एल. श्रीकण्ठमूर्ति)

अभी पिछले दिनों एक व्यक्ति ने बक्कल उतारने की बात कही, तो एक लेखक ने उसे बेल्ट का 'बक्कल' समझ लिया, जबकि वह संस्कृत का शब्द 'वल्कल' (वृक्ष की छाल) अर्थात इससे बना शब्द बक्कल (तद्भव) है।

भाषा जलधारा की तरह अपने निरंतर प्रवाह के कारण बदलती रहती है। यह बदलाव शब्द के रूप का भी हो सकता, अर्थ का भी हो सकता। यह बदलाव ही भाषा की सुंदरता है। भाषा का प्रवाह रुकेगा, तो वह नदी की जलधारा न बनकर, पोखर बन जाएगी। प्रवाह का रुकना ही भाषा का सिमटना है। भाषा एक ऐसा यात्री है, जो बिना रुके, बिना थके अपने पथ पर अग्रसर रहता है। यही उसका जीवन है, निरंतर आगे बढ़ने में ही उसका अस्तित्व है।

पर्यावरण संवहनीयता और मानव विकास

यह तो सर्वविदित है कि मानव सदियों पूर्व बिलकुल अलग था और वह अपने आकार और बनावट में बहुत कुछ एक वानर या उससे मिलता-जुलता दिखाई देता था। प्रारंभ में सरदी हो या गरमी, बरसात हो या आँधी-तूफान, वह अपने शरीर पर पेड़ों की छाल ओढ़कर अपनी सुरक्षा कर लेता था। गुफाओं और कंदराओं में रहने वाला मानव कंद-मूल खाकर अपना जीवनयापन करता था और अपनी सुरक्षा के लिए भी वृक्षों की टहनियों का हथियार के रूप में इस्तेमाल करता था। यहाँ पर यही बात महत्वपूर्ण है कि आदिकाल से ही मानव और पर्यावरण का गहरा रिश्ता बना हुआ है। कालांतर में मानव की आवश्यकताएँ बढ़ती गईं और नई-नई चीजों का आविष्कार होता गया। कहा भी गया है कि 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है'। सतत विकास के लिए मानव ने अनेक प्रयासों में सफलताएँ प्राप्त कीं, लेकिन जाने-अनजाने हमने प्रकृति के साथ खिलवाड़ भी किया और यही कारण है कि हम सब लगातार प्रकृति के शिकार बनते जा रहे हैं। वर्तमान में पूरे विश्व में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश सब-कुछ प्रदूषण की मार झेल रहे हैं और यह प्रदूषण दिन-ब-दिन बढ़ता ही जा रहा है जो कि गंभीर चिंता का विषय बन गया है। पर्यावरण का संकट विश्व में सर्वत्र फैला हुआ है और इसे बचाने के लिए सभी प्रयास किए जा रहे हैं।

मुकेश पोपली

जन्मतिथि : 11 मार्च, 1959 (बीकानेर)।

शिक्षा : एम.कॉम., जनसंचार एवं पत्रकारिता में स्नातकोत्तर।

संप्रति : भा. स्टेट बैंक में राजभाषा अधिकारी।

प्रसारण : आकाशवाणी केंद्र, बीकानेर से रचनाओं का प्रसारण।

प्रकाशन : कहीं जरा सा (कहानी संग्रह), विभिन्न समाचार-पत्रों और साहित्यिक पत्रिकाओं में और ऑनलाइन पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित, भारतीय स्टेट बैंक की गृह पत्रिकाओं का संपादन और रचनात्मक सहयोग, भारतीय रिजर्व बैंक एवं अन्य बैंकों से बैंकिंग विषयों पर आलेख पुरस्कृत।

संपर्क : मोबाइल– 7073888126

ईमेल– mukesh11popli@gmail.com

संवहनीयता की परिभाषा

इससे पूर्व कि हम पर्यावरण संवहनीयता और मानव विकास पर पर्यावरण के प्रभाव की चर्चा करें, हमें संवहनीयता की परिभाषा और उसका अर्थ जानना बेहद आवश्यक है।

"संवहनीयता वह है जो अपनी भावी पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता के साथ वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरी करती है।"

–ब्रंटलैंड रिपोर्ट, 1987

इस परिभाषा से यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि हम वर्तमान में अपना जीवन सुंदर बनाएँ और भविष्य के लिए भी एक सक्षम जीवन बनाने का गंभीरता के साथ संपूर्ण प्रयास करें। यह सही है कि अभाव हमेशा रहेंगे, लेकिन इन अभावों के लिए जिम्मेदार कारणों को दूर करना और उसे पुनः सही रूप में लाना ही संवहनीयता है। कहा जा सकता है कि संवहनीयता एक चुनौती है, मगर इस चुनौती से ही मानव का विकास जुड़ा हुआ है। यदि मानव विकसित होगा तो एक परिवार विकसित होगा, अलग-अलग परिवार विकसित होने से समाज विकसित होगा, समाज विकसित होने से हमारा राष्ट्र विकसित होगा और तदुपरांत एक सुंदर विश्व की कल्पना यथार्थ में परिवर्तित हो जाएगी।

पर्यावरण संवहनीयता का महत्व

पर्यावरण संवहनीयता व्यक्तियों, समुदायों, देशों और अंतरराष्ट्रीय समुदायों को एक नए मार्ग पर ले जाने के लिए सबसे सुयोग्य साधन है। यद्यपि मानव समाज ऊँच-नीच, अमीरी-गरीबी जैसी सामाजिक बीमारियों से

हमेशा से ही ग्रसित रहा है, लेकिन फिर भी मानव के विकास में पर्यावरण और उससे जुड़े अनेक घटकों ने एक नई आशा का संचार भी किया है। बदतर से बद और बद से बेहतर बनने की प्रक्रिया में किसी भी मानव को सबसे अधिक सहयोग पर्यावरण ही प्रदान करता है। इस बात को यूँ आसानी से समझा जा सकता है कि जब भी कोई इनसान किसी छोटी-से छोटी बीमारी में चिकित्सक से संपर्क करता है तो उसे यही सलाह दी जाती है कि घर में साफ-सफाई के साथ-साथ शुद्ध पानी और शुद्ध हवा का रहना अनिवार्य है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि मानव-विकास प्रक्रिया में स्वच्छ वातावरण की एक गंभीर और अनिवार्य भूमिका है क्योंकि कुशाग्र मस्तिष्क के साथ-साथ मानव के काम करने और रहने के स्थान पर एक स्वस्थ वातावरण अति आवश्यक माना गया है।

अमर्त्य सेन के शब्दों में, 'ऐसा प्रदूषित पर्यावरण जिसमें भावी पीढ़ी को ताजा हवा भी न मिल सके, प्रदूषित ही बना रहेगा, भले ही भावी पीढ़ी कितनी ही अमीर क्यों न हो।'

यह सही भी है क्योंकि हम सब अनिश्चितता के दौर में ही तो रहते हैं और यह कोई नहीं जानता कि भविष्य में सर्वश्रेष्ठ जीवनयापन के लिए आप किसे मूल्यवान मानेंगे। आप विकल्प चुनने की स्वतंत्रता के दौर में जब तक केवल अपने आराम के बारे में सोचेंगे तब तक पर्यावरण आपकी सूची में बहुत नीचे होगा क्योंकि आपके पास वैकल्पिक साधनों की भरमार होगी। यदि अन्य बातों के साथ-साथ हम प्राकृतिक साधनों की उपलब्धकता और विविधता को बचाएँगे तभी हमारी क्षमताएँ बढ़ेंगी क्योंकि यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण और मूल्यवान है और इसके लिए हमारे पास पर्याप्त कारण भी मौजूद हैं। पर्यावरण सम्मेलनों और बैठकों में हर बार आगाह किया जाता है कि हम पर्यावरणीय जोखिमों में निरंतर वृद्धि देख रहे हैं और इन सबके कारण स्वास्थ्य संबंधी जोखिम बढ़ रहा है क्योंकि पृथ्वी का तापमान लगातार बढ़ रहा है, ओजोन परत का संकट बढ़ता ही जा रहा है, औद्योगिक प्रदूषण जल, थल और आकाश को घेरता ही जा रहा है और फिर प्राकृतिक आपदाएँ भी हमें चैन से रहने नहीं देती हैं। यदि मानव के विकास में हम लंबी आयु, स्वस्थ जीवन, रचनात्मक गतिविधियों, अभी तक न छुए गए पहलुओं आदि को शामिल करें तो यह धरती सबके लिए एक समान बन पाएगी और प्रत्येक व्यक्ति या समूह या विश्व इसके लाभार्थी होंगे। कहने का अर्थ यही है कि सब लोग एक समान अधिकार के लिए जिएँ और अपने-अपने कर्तव्यों को पूरी ईमानदारी से पूरा करें तभी आप विकसित हो सकते हैं।

"अमर्त्य सेन के शब्दों में, 'ऐसा प्रदूषित पर्यावरण जिसमें भावी पीढ़ी को ताजा हवा भी न मिल सके, प्रदूषित ही बना रहेगा, भले ही भावी पीढ़ी कितनी ही अमीर क्यों न हो।'

यह सही भी है क्योंकि हम सब अनिश्चितता के दौर में ही तो रहते हैं और यह कोई नहीं जानता कि भविष्य में सर्वश्रेष्ठ जीवनयापन के लिए आप किसे मूल्यवान मानेंगे। आप विकल्प चुनने की स्वतंत्रता के दौर में जब तक केवल अपने आराम के बारे में सोचेंगे तब तक पर्यावरण आपकी सूची में बहुत नीचे होगा क्योंकि आपके पास वैकल्पिक साधनों की भरमार होगी। यदि अन्य बातों के साथ-साथ हम प्राकृतिक साधनों की उपलब्धकता और विविधता को बचाएँगे तभी हमारी क्षमताएँ बढ़ेंगी क्योंकि यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण और मूल्यवान है और इसके लिए हमारे पास पर्याप्त कारण भी मौजूद हैं।"

हम सब यह जानते हुए भी कि इस संसार में कुछ भी स्थायी नहीं है, फिर भी हर चीज पर अपना अधिकार मानते हैं यहाँ तक कि प्रकृति पर भी। हम हमारे पास के साधनों की तुलना किसी और के पास उपलब्ध साधनों से कर अपने आपको और अधिक वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए झोंक देते हैं जो कि गलत है। गलत और सही के दृष्टिकोण को समझने के लिए पर्यावरण सबसे अच्छा उदाहरण कहा जा सकता है। पिछले कई वर्षों से दुनिया भर में बड़े पैमाने पर हो रहे पर्यावरणीय क्षरण और भविष्य में इसके बदतर होने की आशंका बताई जा रही है। यहाँ पर यह विचारणीय है कि कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन से मिट्टी, जल तथा वनों की गुणवत्ता में हानिकारक बदलाव हुए हैं और साथ ही स्वास्थ्य और शिक्षा संबंधी उपलब्धियों के बीच अंतर कम होने के बावजूद आय के वितरण की स्थिति दुनिया के अधिकतर देशों में प्रतिकूलता की ओर अग्रसर हुई है, जिससे मानव के सशक्तीकरण सूचकांक में अनेक उतार-चढ़ाव देखने को मिले हैं। वैश्विक तापन के कारण कृषि उत्पादन पर पड़े दुष्प्रभाव, साफ पेयजल और बेहतर साफ-सफाई की उपलब्धता में कमी और प्रदूषण की समस्याएँ शामिल हैं। 'पर्यावरणीय आपदा' के प्रकोप ने भी भू-क्षरण, जैव

विविधता में कमी, वनों की कटाई और पहाड़ों की तह में खुदाई में कोई कसर नहीं छोड़ी है।

यह भी देखा जाता है कि पर्यावरणीय क्षरण के दुष्प्रभाव उन लोगों पर अधिक हावी हो जाते हैं जिनके पास मौलिक सुविधाएँ भी न

के बराबर हैं। दूसरी ओर यह भी सच है कि ऐसे लोगों की एक बड़ी बिरादरी पर्यावरण को सुधारने के स्थान पर उसे विरूपित ही करती है। जलवायु परिवर्तन का कृषि उत्पादन और आजीविका पर तो सीधा प्रभाव पड़ता ही है और साथ ही मवेशी भी प्रभावित होते हैं। पर्यावरण जोखिमों को इस प्रकार देखा जा सकता है :

- कमतर मानव विकास सूचकांक वाले देशों में घरेलू पर्यावरण प्रदूषित ही रहता है क्योंकि वहाँ पर साफ पानी नहीं होता, स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं का अभाव होता है और वायु प्रदूषण तथा ध्वनि प्रदूषण भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।
- सामुदायिक व्यवस्था के अंतर्गत सबसे अधिक प्रभाव वायु प्रदूषण का पड़ता है। अकसर देखा गया है कि वायु प्रदूषण घटने की बजाय बढ़ता है। तमाम कोशिशों के बावजूद समुदाय में फैले प्रदूषण को कम करना बहुत मुश्किल होता है।
- भूमंडलीय प्रभाव वाले जोखिम जैसे ग्रीन हाउस आदि मानव विकास सूचकांक के साथ-साथ पर्यावरण को शुद्ध करने में सहायक होते हैं।

आय और आर्थिक प्रगति हमेशा से ही पर्यावरण को शुद्ध करने की ओर अग्रसर होती हैं, लेकिन फिर भी निश्चित रूप से सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा, यह सुनिश्चित करना संभव नहीं होता। इस बारे में मानव विकास सूचकांक की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि अंतरराष्ट्रीय व्यापार संगठन देशों को उन सब वस्तुओं को जो पर्यावरण प्रदूषित करते हैं, बाहर उत्पादन कराने की अनुमति प्रदान करता है। जीवन-निर्वाह और व्यवसाय के लिए उपयोग किए जाने वाले प्राकृतिक संसाधनों में भिन्नता रहती है और इसी प्रकार ग्रामीण तथा शहरी पर्यावरण के परिदृश्यों में भी अंतर रहता है। इसके साथ-साथ देश की नीतियों और राजनीतिक परिदृश्यों का भी प्रभाव देखने को मिलता है। इस हेतु अलग-अलग स्थानों के लिए अलग-अलग रणनीतियाँ बनाई जाती हैं और उन्हें प्रभावी बनाने के लिए उनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी किया जाता है।

कमजोर संवहनीयता और मजबूत संवहनीयता

वर्ल्डवॉच इंस्टीट्यूट ने एक आकलन पेश किया था कि अमेरिका में वर्ष 2000 में आउटपुट की एक इकाई के उत्पादन में वर्ष 1800 की तुलना में 1/5 से भी कम ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती थी। इसने एक सिद्धांत को जन्म दिया जिसे 'कमजोर संवहनीयता' के नाम से जाना गया जो कि प्राकृतिक संसाधन के क्षरण के स्थान पर कुल उपलब्धि स्टॉक पर केंद्रित होता है।

इस दृष्टिकोण को खारिज करते हुए मजबूत संवहनीयता सिद्धांत के पैरोकार मानते हैं कि कुछ प्राकृतिक संपत्तियों का कोई वास्तविक विकल्प नहीं हो सकता, इसलिए उन्हें संरक्षित रखना होगा। ये संपत्तियाँ न केवल सामानों और सेवाओं के उत्पादन की हमारी क्षमता की दृष्टि से, बल्कि मानव जीवन के लिहाज से भी आधारभूत महत्ता की हैं।

अंत में यह कहना उचित होगा कि समाज के प्रत्येक अंग को हर पल यही कोशिश करनी चाहिए कि समय के आगे बढ़ते पहिये के

साथ ही प्राकृतिक संपदा से मिलने वाली सेवाओं का प्रवाह बना रहे, क्योंकि भौतिक और अन्य तरह की संपदा धरती के बढ़ते तापमान, ओजोन परत के क्षरण और जैव विविधता को हो रहे भारी नुकसान की भरपाई नहीं कर सकती। हाल ही में हरित अर्थव्यवस्था के व्यापक प्रतिमानों के भीतर विकास और पर्यावरणीय संवहनीयता की आपसी समरूपता की गुंजाइश पर जोर दिया जाने लगा है। यह विचार संवहनीयता पर पारंपरिक विचार से भिन्न है और यह उन रास्तों पर जोर देता है जिनमें आर्थिक नीतियाँ टिकाऊ उत्पादन और खपत के ऐसे पैटर्न दे सकती हैं, जो समावेशी हों, गरीबों के हित में हों और रोजाना के आर्थिक फैसलों में पर्यावरणीय चिंताओं को समाहित करें।

याद आती रहेंगी भानु अथैया

यूँ तो भानु अथैया फिल्मों में सन् 1953 से ही वस्त्र-परिधान सज्जा के क्षेत्र में काम कर रही थीं, लेकिन उनका नाम सुर्खियों में तब आया, जब 1983 में फिल्म 'गांधी' के लिए उन्हें ऑस्कर पुरस्कार मिला। वह ऑस्कर जो विश्व सिनेमा का शिखर पुरस्कार माना जाता है। वह ऑस्कर जो 1983 से पहले भारतीय सिनेमा की किसी भी हस्ती को नहीं मिला था। इसलिए भानु को ऑस्कर पुरस्कार मिलना, पूरे भारतीय सिनेमा उद्योग के लिए एक चमत्कार-सा था, एक पुराने सपने का सच होने-सा था। एक बड़ा गौरव था।

प्रदीप सरदाना

संप्रति : वरिष्ठ पत्रकार, स्तंभकार, फिल्म समीक्षक और टीवी पेनेलिस्ट के रूप में देश के विभिन्न प्रतिष्ठित समाचार पत्र-पत्रिकाओं, वेब पोर्टल, आकाशवाणी और न्यूज चैनल्स से जुड़े होने के साथ 'पुनर्वास' साप्ताहिक के संपादक।

लेखन : पिछले 45 वर्षों से लेखन, पत्रकारिता और काव्य की दुनिया में सक्रिय। देश में टेलीविजन पर सर्वप्रथम नियमित पत्रकारिता की शुरुआत करने एवं देश में सबसे कम उम्र के संपादक होने का श्रेय भी प्राप्त है। कुछ वृत्तचित्रों और नाटकों का निर्माण, निर्देशन भी कर चुके हैं।

सम्मान : 37 विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित।

संपर्क : मोबाइल– 9555826269

ईमेल– sardana.pradeep@gmail.com

जब 15 अक्तूबर, 2020 को 91 वर्ष की आयु में भानु अथैया के निधन का समाचार आया तो सबसे पहले उनके जीवन की इस विशिष्ट उपलब्धि की याद ताजा हो आई।

किसी भारतीय को ऑस्कर मिला, यह तो भानु के लिए बड़ी उपलब्धि थी ही, लेकिन इस ऑस्कर के साथ एक बड़ी बात यह भी थी कि उन्हें यह सम्मान सर्वश्रेष्ठ परिधान सज्जा अर्थात 'कॉस्ट्यूम डिजाइनिंग' के लिए मिला था। जिस क्षेत्र में बरसों से अधिकतर अमेरिकी, ब्रिटिश या फिर इटेलियन कॉस्ट्यूम डिजाइनर्स का कुछ ऐसा दबदबा था कि विश्व सिनेमा इसके लिए अभ्यस्त-सा हो चला था कि यह पुरस्कार तो इन्हीं देशों की झोली में जाना ही है। एडिथ हेड तो ऐसी अमेरिकन कॉस्ट्यूम डिजाइनर रहीं जिन्हें कॉस्ट्यूम डिजाइनिंग के लिए आठ बार ऑस्कर मिला, जबकि इस पुरस्कार के लिए वह 35 बार नामांकित हुईं। इसलिए भानु अथैया को फिल्म 'गांधी' में सर्वश्रेष्ठ परिधानों के लिए ऑस्कर सम्मान मिला तो सभी का ध्यान भारत की ओर गया। जब 11 अप्रैल, 1983 लॉस एंजेल्स के डोरोथी शिंडलेयर पवेलियन में भानु अथैया आसमानी रंग की साड़ी में अपना ऑस्कर लेने के लिए मंच पर बढ़ीं तो तालियों की गड़गड़ाहट से मानो सातों आसमान गूँज उठे।

हालाँकि पूरी तरह शालीन और कुछ सकुचाई-सी भानु ने मंच पर पहुँचकर ऑस्कर ग्रहण करते समय बस इतना कहा–"विश्वास नहीं होता...सर रिचर्ड एटनबरो, विश्व का ध्यान भारत की ओर केंद्रित करने के लिए आपका धन्यवाद।"

इस ऑस्कर के बाद तो भानु अथैया स्वयं ही पूरे भारत के लिए एक बड़ा आकर्षण बन गईं। सन् 1983 के बाद कई बरसों तक अकसर विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं से लेकर नौकरी तक के इंटरव्यू

तक में यह प्रश्न आम हो गया था—"पहला ऑस्कर किस भारतीय को मिला था या ऑस्कर पाने वाली भारत की प्रथम महिला का नाम क्या है?" अभी भी यह प्रश्न पूछ लिया जाता है।

महाराष्ट्र के कोल्हापुर में 28 अप्रैल, 1929 को जन्मी भानुमती अन्नासाहेब राजोपाध्येय अपने पिता अन्नासाहेब और माँ शांताबाई की सात संतानों में, क्रम में तीसरे नंबर पर थीं। यह वह दौर था जब देश के अधिकांश हिस्सों में लड़कियों को ज्यादा पढ़ाने या लड़कियों को अपना करिअर बनाने के मौके देने से अधिकतर लोग परहेज करते थे। लेकिन भानु का यह सौभाग्य रहा कि उनके माता-पिता ने उन्हें अपनी उड़ान भरने के भरपूर मौके दिए।

"भानु ने अपने उन दिनों को याद करते हुए एक बार कहा था—"मुझे कुछ वरिष्ठ चित्रकारों ने सलाह दी थी कि मेरा काम अच्छा है, इसे जारी रखो। एक दिन अच्छी कामयाबी मिलेगी, लेकिन मुझे लगा कि पेंटिंग से मेरी जीविका नहीं चलने वाली। इसलिए जब मुझे 'ईव्ज वीकली' पत्रिका में काम करने के साथ फैशन डिजाइनिंग का काम मिलना शुरू हुआ तो मैंने फैशन डिजाइनिंग को अपना लिया।""

भानु के पिता अन्नासाहेब खुद बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वह चित्रकार और फोटोग्राफर थे। भारतीय सिनेमा के संस्थापक फिल्मकारों में से एक बाबूराव पेंटर के साथ भी वह उनकी कुछ फिल्मों से विभिन्न रूपों में जुड़े रहे। इसलिए भानु को अपने बचपन से अपने घर में ही फिल्म कला से लेकर चित्रकला तक का वातावरण मिल गया था। एक दिन पिता ने अपनी नौ साल की बेटी भानु का चित्रकला का शौक देखा तो वह बहुत खुश हुए और उन्होंने उसे गांधीजी का चित्र बनाने को कहा। भानु ने गांधीजी का चित्र बना दिया। तब कौन जानता था कि एक दिन उनकी बेटी भानु, 'गांधी' को लेकर ही विश्वभर में अपना और अपने देश का नाम रोशन करेगी।

हालाँकि भानु को उनकी प्रतिभा के लिए बात-बात पर प्रोत्साहित करने वाले उनके पिता जल्द ही दुनिया से कूच कर गए, लेकिन पिता के बाद माँ ने भी भानु को तब कोल्हापुर से मुंबई के उस प्रतिष्ठित जेजे स्कूल ऑफ आर्ट में भेजने में जरा भी संकोच नहीं किया, जब किसी ने भानु की माँ से कहा कि आपकी बेटी बहुत अच्छे चित्र बनाती है।

भानु राजोपाध्याय ने जेजे स्कूल में भी सभी को अपनी प्रतिभा से प्रभावित कर लिया था। यहाँ से 1952 में स्वर्ण पदक के साथ स्नातक होकर भानु ने पहले चित्रकला को ही अपनी आजीविका का साधन बनाना चाहा। एम.एफ. हुसैन जैसे चित्रकार ने भी भानु की कला को काफी सराहा। भानु की कुछ कलाकृतियाँ विभिन्न चित्र प्रदर्शनियों का हिस्सा भी बनीं। भानु ने अपने उन दिनों को याद करते हुए एक बार कहा था—"मुझे कुछ वरिष्ठ चित्रकारों ने सलाह दी थी कि मेरा काम अच्छा है, इसे जारी रखो। एक दिन अच्छी कामयाबी मिलेगी, लेकिन मुझे लगा कि पेंटिंग से मेरी जीविका नहीं चलने वाली। इसलिए जब मुझे 'ईव्ज वीकली' पत्रिका में काम करने के साथ फैशन डिजाइनिंग का काम मिलना शुरू हुआ तो मैंने फैशन डिजाइनिंग को अपना लिया।"

फिल्म संसार से यूँ बना गहरा नाता

भानु ने शुरू में एक बुटीक के लिए वस्त्र डिजाइनिंग का काम शुरू किया। उस बुटीक में उस दौर की मशहूर अभिनेत्री कामिनी कौशल अपने परिधान तैयार कराती थीं। इसलिए सबसे पहले भानु ने सन् 1953 में कामिनी कौशल की फिल्म 'शहंशाह' और उसके बाद 'चालीस बाबा एक चोर' के लिए परिधान तैयार किए। भानु के निधन के बाद पिछले दिनों जब मैंने वयोवृद्ध कामिनी कौशल से इस बाबत पूछा तो वह बोलीं—"हाँ यह बात सही है कि भानु ने सबसे पहले मेरे वस्त्र डिजाइन किए थे।"

कामिनी जी के बाद उस दौर की एक और लोकप्रिय अभिनेत्री नर्गिस ने भानु की फैशन को लेकर नई कल्पनाओं को देखा तो वह भी उनसे प्रभावित हो गईं।

नर्गिस उन दिनों एक फिल्म कर रही थीं—'एक था राजा एक थी रानी'। इस फिल्म के एक गीत के लिए भानु ने नर्गिस के परिधान तैयार किए, लेकिन यह फिल्म अधर में लटक गई। पर इसी दौरान नर्गिस ने भानु को राज कपूर से मिलवा दिया। जो उन दिनों अपनी फिल्म 'श्री 420' की शूटिंग कर रहे थे। इस फिल्म में नर्गिस और राज कपूर की कॉस्ट्यूम का काम दादा खादिलकर कर रहे थे। लेकिन भानु को राज कपूर ने फिल्म की एक और अभिनेत्री नादिरा पर फिल्मांकित किए जाने वाले एक दिलकश गीत 'मुड़ मुड़ कर न देख मुड़ मुड़ के' लिए एक ऐसी ड्रेस तैयार करने को कहा जो उस गीत में और भी चमक ला दे।

इस गीत में नादिरा के साथ राज कपूर भी थे और कुछ और नृत्यांगनाओं का समूह भी। भानु ने नादिरा के लिए एक नहीं दो पोशाक बनाईं। नादिरा ने उन दोनों को इस एक गीत में पहना। आज भी यह गीत अमर है। साथ ही नादिरा का वह खूबसूरत अंदाज और चमक भी। हालाँकि 'श्री 420' के क्रेडिट्स में फिल्म स्क्रीन पर भानु का नाम नहीं गया था, लेकिन 'मुड़ मुड़ कर न देख' की सफलता के बाद खुद भानु ने भी कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा।

भानु को फिल्मों में कॉस्ट्यूम डिजाइनर के रूप में, स्वतंत्र रूप से बड़ा मौका फिल्मकार गुरुदत्त की फिल्म 'सीआईडी' (1956) से मिला। इस फिल्म में कॉस्ट्यूम डिजाइंस के लिए भानुमती के नाम से उनको श्रेय दिया गया। राज खोसला के निर्देशन में बनी 'सीआईडी' में देव आनंद और शकीला तो थे ही, लेकिन यह वहीदा रहमान की पहली हिंदी फिल्म थी। लेकिन वहीदा अपनी इस पहली फिल्म से जहाँ स्टार बन गईं। वहाँ भानु को भी इस फिल्म के बाद लगातार सफलता मिलती चली गई।

फिल्मों को समर्पित 60 वर्ष

यदि हम भानु अथैया के फिल्मों में कॉस्ट्यूम डिजाइनिंग के करिअर को ध्यान से देखें तो शुरुआती दौर में गुरुदत्त ने उन्हें बहुत अच्छे मौके दिए। 'सीआईडी' के बाद गुरुदत्त ने 'प्यासा', 'कागज के फूल', 'चौदहवीं का चाँद' और 'साहिब बीवी और गुलाम' जैसी चर्चित फिल्मों के परिधान अलंकरण का जिम्मा भानुमती को ही सौंपा। ये सभी फिल्में आज हिंदी सिनेमा की कालजयी फिल्मों में गिनी जाती हैं।

यूँ भानु ने कई दिग्गजों के साथ काम किया, जिनमें गुरुदत्त और राज कपूर के अलावा देव आनंद, राज खोसला, कमाल अमरोही, बी.आर. चोपड़ा, यश चोपड़ा, जी.पी. सिप्पी, दिलीप कुमार, सुनील दत्त, लेख टंडन, एल.वी. प्रसाद, नासिर हुसैन, एन.एन. सिप्पी, यश जोहर, प्रकाश मेहरा, सुभाष घई, गुलजार, विधु विनोद चोपड़ा, आशुतोष गोवारिकर, जब्बार पटेल और संजय लीला भंसाली जैसे कई भारतीय फिल्मकार हैं तो रिचर्ड एटनबरो और कोनराड रूक्स सरीखे ब्रिटिश, अमेरिकी फिल्मकार भी।

जब भानु ने कामिनी कौशल की फिल्म 'शहंशाह' (1953) के लिए पहली बार कॉस्ट्यूम डिजाइनिंग की थी तब उनकी उम्र मात्र 24 वर्ष थी। जबकि उनकी अंतिम फिल्म, एक मराठी फिल्म 'नागरिक' थी जो 2014 में बनी थी। इस प्रकार से भानु के अपने 91 वर्ष के जीवन में से 61 वर्ष फिल्मों को समर्पित रहे।

इस दौरान उन्होंने करीब 125 फिल्मों के लिए वेशभूषा तैयार करके जमकर काम किया और खूब नाम कमाया। पहले वह कभी भानु और कभी भानुमती के नाम से काम करती रहीं, लेकिन गीतकार सत्येन्द्र अथैया से शादी के बाद वह भानु अथैया हो गईं। हालाँकि सत्येन्द्र के साथ उनका वैवाहिक जीवन सफल नहीं रहा और कुछ बरस बाद दोनों अलग हो गए। इनकी एक बेटी है राधिका गुप्ता जो कोलकाता में रहती हैं। भानु अथैया ने अपनी कला यात्रा और अनुभवों पर 2012 में एक पुस्तक 'द आर्ट ऑफ कॉस्ट्यूम डिजाइन' भी लिखी थी। हालाँकि उसके बाद करीब आठ वर्षों से वह पहले दिमागी कैंसर और फिर लकवा भी हो जाने से काफी अस्वस्थ रहीं। अन्यथा उनकी परिधान कला से कुछ और भी फिल्में सुसज्जित होतीं।

परिधान सज्जा को दिलाई विशिष्ट पहचान

भानु अथैया की सबसे खास बात यह रही कि उन्होंने अपने कार्य क्षेत्र को सिनेमा में एक विशिष्ट पहचान दिलाई। यूँ फिल्मों में वेशभूषा का कार्य मूक सिनेमा की पहली फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' के समय से ही होता आया है, लेकिन वर्षों तक यह काम वे लोग करते रहे जो नाटक कंपनियों के लिए पोशाक बनाते थे। इसलिए फिल्मकारों को पहले जब भी अपनी फिल्मों के लिए राजा-रानी, देवी-देवताओं, साधु-संन्यासियों, सैनिकों, पंडित, पादरी, काजी, हीर-राँझा, लैला-मजनूँ या रोमियो-जूलियट जैसी किसी भी पोशाक की जरूरत होती थी तो वे 'ड्रेसवाला' से संपर्क करते थे। लेकिन भानु ने अपने काम से फिल्मों में परिधान सज्जा को एक नए शिखर पर पहुँचा

दिया। इससे यह हुआ कि फिल्मकार फिल्म बनाते हुए जिस तरह अपनी फिल्म के लिए अच्छे अभिनेता, अभिनेत्री, गीतकार, संगीतकार आदि को महत्व देते थे, वैसे ही अच्छी परिधान सज्जा भी उनकी बड़ी जरूरत बन गई। सच कहा जाए तो भानु ने 'कॉस्ट्यूम डिजाइनर्स' के लिए फिल्मों के नए द्वार खोल दिए।

"परिधान सज्जा में अपने किए गए असाधारण योगदान के लिए भानु को ऑस्कर के अतिरिक्त दो बार राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। पहली बार 1991 में फिल्म 'लेकिन' के लिए और दूसरी बार 2002 में फिल्म 'लगान' के लिए।"

असल में भानु ने परिधान बनाने के लिए कड़ा परिश्रम किया। उन्हें इतिहास, कला, संस्कृति, परिवेश और फैशन की गहरी समझ थी। यही कारण रहा कि भानु की जहाँ गांधी, आंबेडकर, मीरा, रजिया सुल्तान, आम्रपाली, गाइड, 1942 लव स्टोरी, लगान और स्वदेश जैसी इतिहास और विशेष समय और काल खंड वाली फिल्में हों या मुस्लिम पृष्ठभूमि पर बनीं 'निकाह' और 'चौदहवीं का चाँद', भानु ने अपने काम से चार चाँद लगा दिए। वहाँ प्रेम, रहस्य, रोमांच, पौराणिक और पश्चिमी परिवेश की कथाओं पर भानु ने अपना श्रेष्ठ प्रदर्शन किया। भानु ने फिल्मों में पात्रों के वस्त्रों पर ही नहीं, उनके गहने, जूते, चप्पल सहित अन्य कई वस्तुओं में भी अपनी समझ और परिकल्पनाओं के भरपूर रंग भरे, जिसे देख सभी को यह मानने पर विवश होना पड़ा कि फिल्मों के लिए परिधान सज्जा भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

नायिकाओं को दिया नया अंदाज

भानु ने अपनी फिल्म यात्रा में ऐसे कई परिधान तैयार किए जो बहुत-सी नायिकाओं की पहचान बने और बाद में देश की युवा पीढ़ी ने उन परिधानों को अपनाकर एक नए फैशन, एक नए प्रचलन को जन्म दिया। उदाहरणतः फिल्म 'वक्त' में साधना और शर्मिला टैगोर के परिधानों में चूड़ीदार पाजामी और तंग कुर्ता। 'आदमी और इंसान' में मुमताज और सायरा बानो के परिधान, जिसमें मुमताज पर

फिल्मांकित 'जिंदगी इत्तफाक है' में मुमताज की काले और गुलाबी रंग की वे दो पोशाकें जो आधुनिक युवतियों में आज तक लोकप्रिय हैं। फिल्म 'ब्रह्मचारी' में गीत 'आजकल तेरे मेरे प्यार के चर्चे' में मुमताज द्वारा पहनी वह पोशाक तो 'मुमताज साड़ी' के रूप में वर्षों बेमिसाल बनी रही। ऐसे ही 'अपना देश' के गीत 'दुनिया में लोगों को' में राजेश खन्ना और मुमताज के परिधान भी फैशन का नया अंदाज बने।

राज कपूर की 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' में जीनत के लिबास हों या 'प्रेम रोग' में पद्मिनी कोल्हापुरी और 'राम तेरी गंगा मैली' में मंदाकिनी के, या फिर कोनराड रूक्स की भारतीय-अमेरिकी फिल्म

'सिद्दार्थ' और सुभाष घई की 'कर्ज' में सिमी गरेवाल और 'चाँदनी' में श्रीदेवी के। ऐसे ही 'रेशमा और शेरा' में वहीदा रहमान और राखी का, 'मेरा साया' में साधना, 'जीने की राह' में तनुजा, 'जॉनी मेरा नाम' और 'महबूबा' में हेमा मालिनी, 'नागिन' में रीना रॉय, दो अंजाने', 'नटवारलाल' और 'घर' में रेखा, सभी ने एक नया सौंदर्य शास्त्र रचा।

परिधान सज्जा में अपने किए गए असाधारण योगदान के लिए भानु को ऑस्कर के अतिरिक्त दो बार राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। पहली बार 1991 में फिल्म 'लेकिन' के लिए और दूसरी बार 2002 में फिल्म 'लगान' के लिए।

हालाँकि ऑस्कर पुरस्कार की प्रतिमा भानु अथैया ने ऑस्कर कार्यालय को, दिसंबर 2012 में यह कहकर लौटा दी थी कि मेरे बाद मेरी यह ट्रॉफी वहाँ ज्यादा सुरक्षित रहेगी। भानु से पहले एडिथ हेड सहित और भी कई ऑस्कर विजेता अपने अंतिम दिनों में अपनी ट्रॉफी ऑस्कर कार्यालय को सौंपते रहे हैं जिससे वहाँ जाने वाले विश्वभर के फिल्मकार और अन्य फिल्म प्रेमी उनके पुरस्कार को वहाँ देख उनका स्मरण कर सकें। भानु अथैया का उत्कर्ष कार्य और वहाँ सुशोभित उनका ऑस्कर भी, सभी को उनकी उपलब्धियों के साथ-साथ, गांधी और भारत की याद भी वर्षों तक दिलाता रहेगा।

शिक्षा में भाषा का प्रश्न

भारत में ब्रिटिश पराधीनता या उसके बाद भी शिक्षा को लेकर एक प्रश्न प्रमुखता से उभरता है–शिक्षा प्रणाली में भाषा की भूमिका। स्वाधीनता संग्राम के दौरान हमारे सेनानियों ने देश की शिक्षा नीति के संबंध में जो सपना देखा था, यह प्रश्न उसी से जुड़ा हुआ है। हालाँकि इस विषय पर काफी प्रयास हुए, नीतियाँ भी बनीं, पर परिणाम अत्यल्प ही रहे, क्योंकि प्रयास में ईमानदारी का अभाव रहा। बीच-बीच में थोड़ी-बहुत उम्मीद जगी भी तो उसे ठंडे बस्ते में डाला जाता रहा।

स्वाधीनता सेनानियों ने यह सपना लॉर्ड मैकाले की शिक्षा नीति के विरोध में बुना था। वस्तुतः परतंत्र भारत में मैकाले की सिफारिश पर जो शिक्षा प्रणाली भारतवासियों पर जबरदस्ती लादी गई थी, उसके मूल उद्देश्य में ही निहित था–"हिंदुस्तान में ऐसा शिक्षित वर्ग तैयार करना, जो चमड़ी के रंग से भले ही अंग्रेज न हो, मगर विचारों, भावनाओं और व्यवहार में पूरी तरह अंग्रेज हो।" इस संबंध में मैकाले की उस संबोधन की प्रतिलिपि ऊपर प्रदर्शित है, जिसे उसने ब्रिटिश संसद में 02 फरवरी, 1835 को दिया था। इस संबोधन से यह स्पष्ट है कि लॉर्ड मैकाले की सोच क्या थी, और वह अपने सोच को लागू करने में किस हद तक सफल रहा।

स्वाधीनता आंदोलन के दौरान हमारे सभी नेताओं ने मैकाले की इस शिक्षा दृष्टि का विरोध किया। इनमें उदार दल के गोपाल कृष्ण गोखले, महादेव गोविंद रानाडे से लेकर गरम दल के बाल गंगाधर तिलक, विपिन चंद्र पाल, लाला लाजपत राय जैसे नेता शामिल थे। इन्हीं वजहों से उन्होंने ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली के समानांतर शिक्षण संस्थाएँ स्थापित कीं। इस कड़ी में देश के विभिन्न प्रदेशों यथा, महाराष्ट्र में दक्कन एजुकेशन सोसायटी ने कई महाविद्यालय स्थापित किए। साथ ही, उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में आर्य समाज जैसे संगठनों ने डीएवी महाविद्यालयों की एक पूरी श्रृंखला स्थापित की और पूर्वी भारत में ब्रह्म समाज, स्वदेशी आंदोलन तथा रामकृष्ण मिशन ने समांतर शिक्षण संस्थाएँ गठित कीं। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा शांति निकेतन, पंडित

LORD MACAULAY'S ADDRESS TO THE BRITISH PARLIAMENT 2 FEBRUARY, 1835

"I have travelled across the length and breadth of India and I have not seen one person who is a beggar, who is a thief, such wealth I have seen in this country, such high moral values, people of such caliber, that I do not think we would ever conquer this country, unless we break the very backbone of this nation, which is her spiritual and cultural heritage, and, therefore, I propose that we replace her old and ancient education system, her culture, for if the Indians think that all that is foreign and English is good and greater than their own, they will lose their selfesteem, their native culture and they will become what we want them, a truly dominated nation."

डॉ. साकेत सहाय

संप्रति : राष्ट्रीयकृत बैंक में वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा) के रूप में कार्यरत।

भारतीय वायु सेना एवं बैंकिंग उद्योग में कार्य करते हुए 30 से अधिक राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय सेमिनारों में अपने शोध-पत्र प्रस्तुत किए हैं। इनकी 100 से अधिक रचनाएँ राष्ट्रीय स्तर की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी पुस्तक 'इलेक्ट्रॉनिक मीडिया : भाषिक संस्कार एवं संस्कृति' प्रकाशित हुई है।

सम्मान : वर्ष 2018 में हिंदी में उल्लेखनीय लेखन के लिए भारत के महामहिम राष्ट्रपति द्वारा 'राजभाषा गौरव पुरस्कार' से सम्मानित। भारत उत्थान न्यास द्वारा शिक्षा एवं साहित्य में सम्मान।

संपर्क : मो.– 8800556043

ईमेल– hindisewi@gmail.com

मदन मोहन मालवीय द्वारा काशी हिंदू विश्वविद्यालय एवं सर सैयद अहमद खाँ ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना भी इसी उद्देश्य से की। इन सभी संस्थाओं ने शिक्षा का स्वदेशीकरण किया। इसके लिए उन्होंने भारतीय भाषाओं को शिक्षा में अधिक-से-अधिक स्थान देने की कोशिश की, हालाँकि अंग्रेजी स्कूल-कॉलेजों से प्रतिस्पर्धा करने के लिए महत्वपूर्ण विषयों के माध्यम के रूप में अंग्रेजी को अपनाया जाता रहा। गुरुकुल काँगडी तथा स्वामी दयानंद एंग्लो वैदिक स्कूल स्वदेशी शिक्षा प्रणाली की मुखर अभिव्यक्ति बने, लेकिन अंग्रेज शासकों ने इस दिशा में एक चाल चली और इस प्रकार के प्रयासों को सांप्रदायिक एवं पिछड़ेपन से जोड़ना शुरू कर दिया।

भारतीय भाषाओं में शिक्षा के महत्व को स्वाधीनता आंदोलन के नेताओं ने 20वीं सदी के दूसरे दशक में तब घोषित रूप में स्वीकार किया जब कांग्रेस समितियों का निर्माण भाषावार प्रादेशिक विभाजन के आधार पर किया गया। आगे चलकर स्वाधीन भारत में भाषावार प्रांतों की रचना का काम इसी विचार को लेकर हुआ, पर इन सभी के बीच एक राष्ट्रभाषा को लेकर भी सहमति बन रही थी। महात्मा गांधी द्वारा इंदौर के अधिवेशन में हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की बात कहना इसी कड़ी में माना जा सकता है। साथ ही, उनकी इस बात का उत्तर से लेकर दक्षिण तक समस्त नेताओं द्वारा समर्थन किया जाना, इस बात को आगे बढ़ाता है।

शिक्षा में क्रांति का दूसरा दौर वर्ष 1919 में महात्मा गांधी द्वारा चलाए गए असहयोग आंदोलन के समय प्रांरभ हुआ। महात्मा गांधी ने अंग्रेजी स्कूल-कॉलेजों के बहिष्कार का आह्वान किया और हजारों छात्र अंग्रेजी स्कूल-कॉलेजों को छोड़ स्वाधीनता आंदोलन में शामिल हो गए। इन छात्रों के लिए समांतर शिक्षण संस्थाएँ बनीं, जैसे—गुजरात विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, जामिया मिल्लिया इस्लामिया आदि। इन संस्थाओं में चूँकि अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली का बहिष्कार निहित था, अतः इनमें भारतीय भाषाओं को उच्च शिक्षा के लिए अपनाया गया। इसके साथ पूरे भारत के लिए एक राष्ट्रभाषा को भी स्वीकार किया गया और इसके लिए महात्मा गांधी और उनके शिष्य राजगोपालाचारी के प्रयासों से दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा और बाद में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की स्थापना हुई।

बच्चों को मातृभाषा में शिक्षा दी जाए, इस विचार पर लगभग सभी नेता उस समय सहमत थे। महात्मा गांधी ने तो यहाँ तक कहा कि यदि मेरे पास तानाशाह की शक्ति हो तो मैं तमाम अध्यापकों को आदेश दूँगा कि वे बच्चों को अंग्रेजी के माध्यम से पढ़ाना तुरंत बंद कर दें, नहीं तो उन्हें नौकरी से बर्खास्त किया जाएगा। उस समय गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सुभाष चंद्र बोस से लेकर राजगोपालाचारी तक हिंदी को भारतीय शिक्षा का प्रमुख माध्यम बनाने को पक्षधर थे। भले ही स्वाधीनता प्राप्ति के बाद दक्षिण के राज्यों में राजनैतिक फायदे के लिए हिंदी का विरोध किया गया, परंतु हिंदी के महत्व को देखते हुए वर्ष 1935 में ही मद्रास राज्य के मुख्यमंत्री सी. राजगोपालाचारी ने हिंदी शिक्षा को अनिवार्य कर दिया था।

यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि संविधान को सर्वोपरि मानने वालों ने आजादी के बाद हिंदी के साथ ही महात्मा गांधी के सपनों को भी तिलांजलि दे दी और बाद में राजनीतिक निहितार्थ शिक्षा में राष्ट्रीय भावना एवं भाषा के महत्वपूर्ण प्रश्न को दरकिनार करते हुए हिंदी को मातृभाषा, राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा के प्रश्न में उलझाते हुए उच्च शिक्षा में एक विदेशी भाषा को श्रेष्ठ बनाने का प्रयत्न करते रहे। इससे हिंदी के साथ अन्य भारतीय भाषाएँ भी दोयम दर्जे पर बनी रहीं। इसका खामियाजा एक बहुत बड़ी आबादी ने चुकाया और अब तो यह स्थिति बन गई है कि अब प्राथमिक शिक्षा से भी भारतीय भाषाएँ विस्थापित हो रही हैं। शिक्षा में भारतीय भाषाओं के प्रति यह दुराव की भावना तथा राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के प्रति द्वेष की इस भावना ने देश का बड़ा नुकसान किया है। प्राथमिक शिक्षा मौलिक अधिकार के रूप में जरूर शामिल हो गया है, पर शिक्षा में हद से ज्यादा एक विदेशी भाषा को महत्व दिया जाना न केवल व्यवस्था, बल्कि मानवाधिकार को भी रोज मुँह चिढ़ाता है।

भले ही हमें भारतीय भाषा, जीवन पद्धति, मूल्य, त्याग, निष्ठा, समर्पण के आधार पर आजादी प्राप्त हुई हो, पर इस तथ्य से कोई भी इनकार नहीं कर सकता कि आजादी के बाद हमारी शिक्षा पद्धति के मूल आधार भारतीय भाषाओं को वह दर्जा नहीं मिला, जिसकी वे अधिकारी थीं। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था को ज्यों-का-त्यों बनाए रखना एक बड़ी भूल साबित हुई। हिंदी को सन् 1949 में 14 सितंबर को भारत की राजभाषा का दर्जा दिया गया। तब से अब तक विभिन्न प्रयास भी किए गए, परंतु इन सभी में सामान्य रूप से निष्ठा का अभाव देखा गया। देखा जाए तो हिंदी या हमारी दूसरी भारतीय भाषाओं की वर्तमान दशा ही देश की बदहाल शिक्षा व्यवस्था का सूचक है। जबकि संविधान में स्पष्टतया हिंदी व भारतीय भाषाओं के संवर्धन की बात कही गई है, पर इतने स्पष्ट दिशा-निर्देशों के बावजूद अंग्रेजी आज भी पूरे देश में हावी है और भारतीय भाषाएँ लाचार नजर आती हैं। इसके लिए भले ही हम लॉर्ड मैकाले की शिक्षा पद्धति को दोष देते रहें, पर सच तो यह है कि शिक्षा शास्त्रियों के इस देश में अभी तक ऐसी शिक्षा नीति नहीं बन पाई, जिससे देश के नागरिकों को अपनी भाषा में पढ़ने की छूट मिल सके। दूसरी ओर विदेशों में हिंदी-संस्कृत जैसी भाषाओं की लोकप्रियता बढ़ रही है।

इस शिक्षा पद्धति का ही यह असर है कि आज हमारे यहाँ शिक्षा का मतलब केवल बाबू बनना या डॉक्टर-इंजीनियर बनना रह गया है और वह भी केवल पद और पैसा हेतु। हम केवल सेवा प्रदाता लोग बनकर रह गए। उद्यमशीलता की प्रवृत्ति कमजोर होती गई। उदाहरण के लिए, हमारे लिए सफलता का पैमाना सत्या नडेला के माइक्रोसॉफ्ट

के प्रशासनिक प्रधान बनने से अधिक एक सफल उद्यमी बनने से नापा जाना चाहिए क्योंकि इस देश की शिक्षा प्रणाली को सत्या नडेला के प्रमुख बनाने से अधिक ऐसी पौध तैयार करने की जरूरत है जो फेसबुक, गूगल जैसी कंपनियों की स्थापना भारत में कर सके। वास्तव में अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा तोतारटंत एवं नौकर बनाने भर रह गई है। जरूरत है इसमें गुणात्मक बदलाव की।

यह मौलिक शिक्षा में गुणात्मक कमी का ही नतीजा है कि हमारे देश में काफी कम लोग शिक्षा, शोध एवं अनुसंधान के क्षेत्र में उत्सुकता के साथ अग्रसर होते हैं। नोबेल पुरस्कार से दूरी का यह भी एक महत्वपूर्ण कारण है। यह सिद्ध तथ्य है कि प्रारंभ से ही युवाओं को अपनी भाषा में शिक्षा देने से दूर रखना हमारी शिक्षा व्यवस्था के लिए घातक ही रहा है। कुछ राज्यों में भारतीय भाषाओं में शिक्षा देने के प्रयोग शुरू तो हुए, परंतु सारी व्यवस्था अंग्रेजी आधारित बनी रही। ऐसे में भारतीय शिक्षा व्यवस्था के बच्चे दीन-हीन बने रहे। एक प्रकार से अंग्रेजी समाज के सीमित वर्गों को लाभ पहुँचाती रही और यही वर्ग सारी व्यवस्था में मजबूती से कायम रहा। एक प्रकार से अंग्रेजी शिक्षा भारत की जाति व्यवस्था से भी अधिक सामंती प्रवृत्ति की प्रतीक है। इस प्रवृत्ति से देश में ऐसा माहौल बना कि अंग्रेजी के बिना यह देश प्रगति के हर मार्ग पर पिछड़ा रह जाएगा। साथ ही, यह जुमला भी गढ़ा गया कि अंग्रेजी के बिना देश की एकता भी खंडित हो जाएगी।

हालाँकि इस मानसिकता के खिलाफ प्रसिद्ध राजनेता राममनोहर लोहिया ने 'अंग्रेजी हटाओ' आंदोलन चलाया जिसका दक्षिण के मात्र एक राज्य में घोर राजनैतिक विरोध हुआ तथा शेष राज्यों में छिटपुट विरोध हुआ। वहाँ के राजनीतिक नेतृत्व को यह लगा कि अंग्रेजी हटाने का मतलब यह हुआ कि हिंदी का साम्राज्य उन पर लादा जाएगा। यह निहित स्वार्थी तत्वों का कुप्रचार था क्योंकि लोहिया जी अंग्रेजी के स्थान पर सभी भारतीय भाषाओं को प्रतिष्ठित करना चाहते थे। साथ ही, इस तथ्य की भी अनदेखी कर दी गई कि हिंदी सर्वभारतीय समाज की भाषा है जो सदियों से जनभाषा के रूप में पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी, हिंदुस्तानी के रूप में संपूर्ण देश में प्रचलित रही है। यह भ्रम है कि हिंदी केवल उत्तर भारत की भाषा है। तथ्य यह है कि हिंदी सभी भारतीय भाषाओं से सिंचित है जिसकी अनदेखी शिक्षा शास्त्रियों द्वारा की गई है।

साठ के दशक में कोठारी आयोग ने भारतीय भाषाओं में शिक्षा को प्रोत्साहन देने और पड़ोस के स्कूलों की सिफारिशें की थीं, जो विशेष रूप से महत्वपूर्ण थीं। गरीब-अमीर सभी तबकों के बच्चों को समता के वातावरण में एक साथ शिक्षित करने की इस सिफारिश को कार्यान्वित ही नहीं होने दिया गया तथा शिक्षा अपने पुराने ढर्रे पर ही चलती रही। वैश्वीकरण के बाद तो स्वास्थ्य एवं अन्य सार्वजनिक सेवाओं की तरह शिक्षा भी खास एवं आम में विभाजित हो गई है। कुछ विद्वानों ने इसे ही इंडिया एवं भारत का नाम दिया है। कोठारी आयोग के 20 साल बाद नई शिक्षा नीति बनाई गई। इसमें नवोदय विद्यालयों के नाम पर विशेष वर्गों की शिक्षा सुविधाओं का विस्तार तो हुआ, परंतु शिक्षा के माध्यम तथा पाठ्यक्रम ढाँचे में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ। बाद में प्राथमिक स्तर की शिक्षा में सुधार के लिए ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड तथा शिक्षा को मूलभूत अधिकार बनाने हेतु दिए गए संवैधानिक अधिकार के भी खास नतीजे नहीं निकले।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2019 के प्रारूप में शिक्षण व्यवस्था को मुख्य रूप से चार भागों में बाँटा गया है—पहले भाग में विद्यालयीय शिक्षा, दूसरे में उच्च शिक्षा और तीसरे में प्रौद्योगिकी, व्यावसायिक व वयस्क शिक्षा को रखा गया है। इसमें भारतीय भाषाओं पर विशेष जोर दिया गया है। साथ ही, हिंदी को भी पर्याप्त महत्व दिया गया है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्वाधीनता प्राप्ति के 73 वर्षों के बाद भी हमारी शिक्षा बहुत अच्छी स्थिति में नहीं है। इस दुर्व्यवस्था का जहाँ एक बड़ा कारण आर्थिक अनाभाव है, वहीं विदेशी भाषा में दबाव आधारित एवं गुणहीन शिक्षा व्यवस्था भी इस हेतु जिम्मेदार है। विडंबना यह है कि इस तरफ न तो सरकारें ध्यान देती हैं और न ही शिक्षित समझा जाने वाला वर्ग और यदि कोई इस सवाल को उठाता भी है तो उसे आज के समय में मूर्ख ही समझा जाता है।

अंग्रेजी के अभूतपूर्व दबाव से दिन-प्रतिदिन अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों का महत्व बढ़ता जा रहा है, भले ही वे गुणात्मक रूप से कमजोर ही क्यों न हों। गरीब-से-गरीब आदमी भी अंग्रेजी के नाम पर स्तरहीन स्कूलों में अपने बच्चों को पढ़ाने पर मजबूर है। यह स्थिति जहाँ निचले स्तर पर काम आने वाले दिहाड़ी मजदूर पैदा करती है, वहीं उच्च स्तर पर विदेशों के लिए आईटी गिरमिटिया तैयार करने का काम करती है। अब इसे क्या कहेंगे कि तकनीकी शिक्षण संस्थानों से निकलने वाले बच्चे अंतिम परीक्षाएँ पास करने से पूर्व ही पासपोर्ट बनवा लेते हैं ताकि पहले अवसर में ही विदेश जाने का मौका न छूट जाए। इसमें दोष अंग्रेजी का नहीं है, दोष हमारी आत्महीनता का है जिसे हम भाषा से अधिक व्यवस्था एवं जीवन-शैली का प्रश्न मानते हैं।

हालाँकि राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 एक उम्मीद की किरण पैदा करती है, परंतु यह तब संभव होगा जब इसे ईमानदारीपूर्वक लागू किया जाए। साथ ही, यह भी जरूरी है कि भारतीय जीवन पद्धति के मूलभूत तथ्यों को अपनाया जाए। शिक्षा में तथ्यों को रटने की बजाय समझ विकसित करने की जरूरत पर बल दिया जाए। आवश्यकता इस बात को समझने की है कि शिक्षा व्यवस्था में बच्चे को स्वतंत्र व्यक्ति माना जाए। उसकी स्वतंत्रता, बालमन एवं अधिकारों का सम्मान रखा जाए और सबसे महत्वपूर्ण यह कि विदेशी भाषा में असहज शिक्षा देकर कोई भी राष्ट्र इन लक्ष्यों को हासिल नहीं कर सकता। इन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु पूरी व्यवस्था एवं मानसिकता को बदलना होगा, अन्यथा 'शिक्षा में भाषा का प्रश्न' सदैव बना रहेगा।

डॉ. कलाम
भारत में तकनीकी नवोन्मेष के प्रणेता

11 मई, 1998 भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गया जब उस दिन देश ने राजस्थान के पोखरण में एक साथ तीन परमाणु विस्फोट किए। ये तीनों परमाणु युक्तियाँ तीन अलग तरह की थीं। उनमें से एक परमाणु बम था, एक छोटी युक्ति (सब-क्रिटिकल) थी, तथा तीसरा हाइड्रोजन बम था। उन विस्फोटों के बाद देश ने खुद को परमाणु शक्ति संपन्न राष्ट्र घोषित किया। इसके दो दिन बाद 13 मई को दो और परमाणु युक्तियों का सफलतापूर्वक परीक्षण संपन्न किया गया। इस तरह दो दिनों में भारत ने कुल पाँच परमाणु परीक्षण किए। यह हमारे देश की तकनीकी क्षमता का प्रदर्शन था। उनमें जटिल स्तर के कौशलों की जरूरत होती है। परमाणु युक्तियों में भौतिकी, रसायन, इलेक्ट्रॉनिक्स, कंप्यूटर साइंस से लेकर कई अन्य विधाएँ शामिल होती हैं। इसीलिए भारत सरकार ने 11 मई को राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी दिवस के रूप में मनाने का निर्णय लिया। इन परीक्षणों की योजना से लेकर उन्हें सफलतापूर्वक संपन्न करने में डॉ. कलाम की अग्रणी भूमिका थी। डॉ. कलाम ने देश में रॉकेटों के विकास में बुनियादी काम किया। साउंडिंग रॉकेट से शुरू यह यात्रा, सैटेलाइट लॉन्च व्हीकल (एसएलवी), फिर आग्मेंटेड सैटेलाइट लॉन्च व्हीकल (एएसएलवी), पोलर सैटेलाइट लॉन्च व्हीकल (पीएसएलवी) से होते हुए जियोसिंक्रोनस सैटेलाइट लॉन्च व्हीकल (जीएसएलवी) तक जाकर पूर्णता को प्राप्त होती है। देश में अब और ज्यादा ताकतवर पीएसएलवी तथा जीएसएलवी रॉकेटों के विकास पर काम चल रहा है। देश ने चंद्रयान, मंगलयान जैसे मिशन भेजकर दुनिया में अपनी तकनीकी क्षमता का लोहा मनवा लिया है। भारत द्वारा अंतरिक्ष में मानवयुक्त मिशन भेजने और स्वयं का अंतरिक्ष स्टेशन स्थापित करने का सपना भी डॉ. कलाम ने देखा था, जिस पर राष्ट्र तेजी से अग्रसर है। डॉ. कलाम ने अंतरिक्ष मिशनों में भेजे जाने वाले एक ऐसे यान की कल्पना की थी जिसे बारंबार इस्तेमाल किया जा सके। वे देश के लिए जरूरी तकनीक अपने यहाँ ही विकसित किए जाने के पक्षधर थे।

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम को 'भारत का मिसाइलमैन' कहा जाता है। वे भारत के मिसाइल कार्यक्रम के जनक थे। उनके द्वारा सफलतापूर्वक विकसित 'अग्नि' और 'पृथ्वी' जैसी बैलेस्टिक मिसाइलों ने देश को सुरक्षित करने में महती भूमिका निभाई है।

प्रो. सतीश धवन और डॉ. कलाम तत्कालीन प्रधानमंत्री
श्रीमती इंदिरा गांधी को एस.एल.वी.-3 के परिणामों की जानकारी देते हुए

डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र

जन्म : 15 मार्च, 1966, जौनपुर (उ.प्र.)।

शिक्षा : एम.एस-सी. (रसायनशास्त्र), पी-एच.डी.।

संप्रति : एसोसिएट प्रोफेसर, होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केंद्र, टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान, मुंबई।

लेखन एवं प्रकाशन : कुल 25 पुस्तकें तथा 300 लेख प्रकाशित, वर्ष 2008 से शैक्षिक पोर्टल (https://vigyanshiksha.in) का संचालन।

सम्मान : राजभाषा गौरव, राजभाषा भूषण एवं होमी जहाँगीर भाभा स्वर्ण पुरस्कार सहित अनेक राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित।

संपर्क : मोबाइल– 9969078625
ई-मेल– vigyan.sahityakaar@gmail.com

डॉ. कलाम का जन्म 15 अक्तूबर, 1931 को मद्रास राज्य (अब तमिलनाडु) के रामेश्वरम् कस्बे में एक मध्यम वर्गीय तमिल परिवार में हुआ था। इनके पिता जैनुलाबदीन की कोई बहुत अच्छी औपचारिक शिक्षा नहीं हुई थी और न ही वे कोई बहुत अमीर इनसान थे। इसके बावजूद वे बुद्धिमान थे और उनमें उदारता की सच्ची भावना थी। वे लोग अपने पुश्तैनी घर में रहते थे, जो कि 19वीं शताब्दी के मध्य बना था तथा रामेश्वरम् के प्रसिद्ध शिवमंदिर से महज दस मिनट की दूरी पर स्थित मस्जिद वाली गली में स्थित था। इनके पिताजी एक

रामेश्वरम् की मस्जिद वाली गली में स्थित डॉ. कलाम का घर

स्थानीय ठेकेदार अहमद जलालुद्दीन के साथ मिलकर लकड़ी की नौकाएँ बनाने का काम करते थे, जो तीर्थयात्रियों को रामेश्वरम् से धनुषकोडि ले जाती थीं। बाद में अहमद जलालुद्दीन की शादी इनकी बड़ी बहन जोहरा से हो गई। इन्हें हर बच्चे की तरह अपने पिताजी से विरासत के रूप में ईमानदारी और आत्मानुशासन तथा माँ से ईश्वर में विश्वास और करुणा का भाव मिला।

उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा रामेश्वरम् के प्राइमरी स्कूल से प्राप्त की। इसके बाद आगे की स्कूली शिक्षा इन्होंने रामनाथपुरम् के श्वाट्र्ज हाई स्कूल से प्राप्त की। सन् 1950 में तिरुचिरापल्ली के सेंट जोसेफ कॉलेज में बी.एस-सी. में दाखिला ले लिया। बी.एस-सी. पूरा करने के बाद उन्होंने यह महसूस किया कि भौतिकी उनका विषय नहीं है। इन्हें अपना सपना पूरा करने के लिए इंजीनियरिंग में जाना चाहिए था। फिर उन्होंने तकनीकी शिक्षा के लिए मशहूर मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (एम.आई.टी.) में दाखिला ले लिया। एम.आई.टी. में उड़ान संबंधी मशीनों की विभिन्न कार्यप्रणालियों को समझाने के लिए प्रदर्शन के तौर पर रखे गए दो विमानों ने इन्हें काफी आकर्षित किया। उन्होंने पहला साल पूरा करने के बाद वैमानिकी (एयरोनॉटिकल) इंजीनियरिंग को अपने विशेष विषय के रूप में चुना। स्नातक के बाद वे एम.आई.टी. से एक प्रशिक्षु के रूप में हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड (एच.ए.एल.), बंगलौर चले गए। वहाँ उन्होंने एक टीम के सदस्य के रूप में इंजनों की मरम्मत का काम किया। यहाँ उन्होंने दोनों तरह के इंजनों, पिस्टन एवं टरबाइन इंजन के रख-रखाव का कौशल सीखा। यहाँ पर उन्होंने रेडियल इंजन तथा ड्रम ऑपरेशनों में भी प्रशिक्षण प्राप्त किया।

जब वे एच.ए.एल. से एक वैमानिकी इंजीनियर बनकर निकले तो उनके पास नौकरी के दो बड़े अवसर थे और दोनों ही उनके वर्षों पुराने उड़ान के सपने को पूरा करने वाले थे। एक अवसर भारतीय वायुसेना में सेवा करने का था, और दूसरा रक्षा मंत्रालय के तकनीकी विकास एवं उत्पादन निदेशालय का। उन्होंने दोनों जगहों पर साक्षात्कार दिया। वे रक्षा मंत्रालय में चयनित हो गए। नौकरी के पहले साल के दौरान उन्होंने एक पराध्वनिक लक्ष्यभेदी विमान का डिजाइन तैयार करने में सफलता हासिल कर ली। विमानों के रख-रखाव का अनुभव हासिल करने के लिए उन्हें एयरक्रॉफ्ट एंड आर्मामेंट टेस्टिंग यूनिट (विमान एवं हथियार प्रशिक्षण इकाई ए. एंड ए.टी.यू.), कानपुर भेजा गया। उस समय वहाँ एम.के.-1 विमान के परीक्षण का काम चल रहा था। इसकी कार्यप्रणालियों के मूल्यांकन को पूरा करने के काम में उन्होंने भी हिस्सा लिया। वापस लौटने पर उन्हें बंगलौर में स्थापित वैमानिकी विकास प्रतिष्ठान (ए.डी.ई.) में भेज दिया गया। यहाँ ग्राउंड इक्विपमेंट मशीन (जैम) के रूप में स्वदेशी होवरक्रॉफ्ट का डिजाइन तैयार करने तथा उसे विकसित करने के लिए शुरुआती अध्ययन के अनुभवों के आधार पर एक टीम बनाई गई। वैज्ञानिक सहायक के स्तर पर इसमें चार लोग शामिल थे जिसका नेतृत्व करने का कार्यभार निदेशक डॉ. ओ.पी. मेदीरत्ता ने कलाम पर सौंपा। उड़ान में इंजीनियरिंग मॉडल शुरू करने के लिए उन्हें तीन साल का वक्त दिया गया। भगवान शिव के वाहन के प्रतीक रूप में इस होवरक्राफ्ट को 'नंदी' नाम दिया गया।

रामनाथपुरम् के श्वाट्र्ज हाई स्कूल का बाहरी दृश्य

इसके उपरांत उन्हें 'इंडियन कमेटी फॉर स्पेस रिसर्च' की ओर से साक्षात्कार के लिए बुलावा आया। उनका साक्षात्कार डॉ. विक्रम साराभाई ने लिया। इस साक्षात्कार के बाद भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति में रॉकेट इंजीनियर के पद पर उन्हें चयनित किया गया। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति में उनका काम टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च, (TIFR) मुंबई के कंप्यूटर केंद्र में

कंप्यूटर प्रशिक्षक के रूप में शुरू हुआ। सन् 1962 के मध्य में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति ने केरल में त्रिवेंद्रम के पास थुंबा गाँव में रॉकेट प्रक्षेपण केंद्र स्थापित करने का फैसला किया। थुंबा को इस केंद्र के लिए सबसे उपयुक्त स्थान के रूप में चुना गया था, क्योंकि यह स्थान पृथ्वी के चुंबकीय अक्ष के सबसे करीब था। उसके बाद शीघ्र ही

“ डॉ. कलाम को रॉकेट प्रक्षेपण की तकनीकियों का प्रशिक्षण लेने के लिए अमेरिका में नेशनल एयरोनॉटिक्स एंड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन (नासा) भेजा गया। यह प्रशिक्षण छह महीने का था। जैसे ही डॉ. कलाम नासा से लौटे, 21 नवंबर, 1963 को भारत का ‘नाइक अपाचे’ नाम का पहला रॉकेट छोड़ा गया। यह साउडिंग रॉकेट नासा में ही बना था। डॉ. साराभाई ने राटो परियोजना के लिए डॉ. कलाम को प्रोजेक्ट लीडर नियुक्त किया। डॉ. कलाम ने विशेष वित्तीय शक्तियाँ हासिल कीं, प्रणाली विकसित की, तथा 08 अक्तूबर, 1972 को उत्तर प्रदेश में बरेली एयरफोर्स स्टेशन पर इस प्रणाली का सफलतापूर्वक परीक्षण किया गया। ”

डॉ. कलाम को रॉकेट प्रक्षेपण की तकनीकियों का प्रशिक्षण लेने के लिए अमेरिका में नेशनल एयरोनॉटिक्स एंड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन (नासा) भेजा गया। यह प्रशिक्षण छह महीने का था। जैसे ही डॉ. कलाम नासा से लौटे, 21 नवंबर, 1963 को भारत का ‘नाइक अपाचे’ नाम का पहला रॉकेट छोड़ा गया। यह साउडिंग रॉकेट नासा में ही बना था। डॉ. साराभाई ने राटो परियोजना के लिए डॉ. कलाम को प्रोजेक्ट लीडर नियुक्त किया। डॉ. कलाम ने विशेष वित्तीय शक्तियाँ हासिल कीं, प्रणाली विकसित की, तथा 08 अक्तूबर, 1972 को उत्तर प्रदेश में बरेली एयरफोर्स स्टेशन पर इस प्रणाली का सफलतापूर्वक परीक्षण किया गया।

डॉ. कलाम को सैटेलाइट लॉन्च व्हीकल (एस.एल.वी.) परियोजना के लिए प्रोजेक्ट मैनेजर नियुक्त किया गया। एस.एल.वी.-3 परियोजना का मुख्य उद्देश्य एक भरोसेमंद लॉन्च व्हीकल विकसित करना था, जो 40 किलोग्राम के सैटेलाइट को पृथ्वी से 400 किलोमीटर ऊँचाई पर कक्षा में स्थापित करता। यह एक बड़ा काम था। यान के चार चरणों के लिए एक रॉकेट मोटर सिस्टम का विकास, हाई एनर्जी प्रोपेलेंटों के इस्तेमाल में सक्षम रॉकेट मोटर सिस्टम में इस्तेमाल के लिए 8.5 टन प्रोपेलेंट ग्रेन निर्मित किया जाना था। एक अन्य कार्य था नियंत्रण तथा मार्गदर्शन। यह एक बड़ी परियोजना थी जिसमें 250 उपभाग और 40 बड़ी उपप्रणालियाँ शामिल थीं। 18 जुलाई, 1980 को सुबह आठ बजकर तीन मिनट पर श्रीहरिकोटा रॉकेट प्रक्षेपण केंद्र से एस.एल.वी.-3 ने उड़ान भरी। इस परियोजना की सफलता ने डॉ. कलाम को राष्ट्रीय पहचान दी। उन्हें इस उपलब्धि के लिए भारत सरकार द्वारा 26 जनवरी, 1981 को ‘पद्मभूषण’ सम्मान से सम्मानित किया गया।

डी.आर.डी.एल में उनकी टीम की महत्वपूर्ण उपलब्धियों के बावजूद मिसाइल कार्यक्रम धीमा था। सैन्य रॉकेटों के सारे कार्यक्रमों में शिथिलता आ गई थी। डी.आर.डी.ओ. में किसी ऐसे व्यक्ति की जरूरत थी जो मिसाइल कार्यक्रम का नेतृत्व कर सके। प्रो. रामन्ना ने डॉ. कलाम के सामने निर्देशित मिसाइल कार्यक्रम को आकार देने की जिम्मेदारी अपने कंधों पर लेने का प्रस्ताव रखा। 01 जून, 1982 को डॉ. कलाम ने डी.आर.डी.एल के निदेशक का पद सँभाल लिया। इसी समय अन्ना विश्वविद्यालय, मद्रास ने इन्हें ‘डॉक्टर ऑफ साइंस’ की मानक उपाधि से सम्मानित किया। एयरोनॉटिकल इंजीनियरिंग में डिग्री हासिल करने के करीब 20 साल बाद यह मानद उपाधि डॉ. कलाम को प्राप्त हुई। डॉ. कलाम ने रक्षामंत्री के तत्कालीन वैज्ञानिक सलाहकार डॉ. वी.एस. अरूणाचलम के मार्गदर्शन में इंटीग्रेटेड गाइडेड मिसाइल डेवलपमेंट प्रोग्राम (आई.जी.एम.डी.पी.) का प्रस्ताव तैयार किया। स्वदेशी मिसाइलों के उत्पादन के लिए एक स्पष्ट और सुपरिभाषित मिसाइल कार्यक्रम तैयार करने के उद्देश्य से डॉ. कलाम की अध्यक्षता में एक समिति बनाई गई।

इस परियोजना के प्रथम चरण में एक कम ऊँचाई पर तुरंत मार करने वाली टेक्टिकल कोर व्हीकल मिसाइल और जमीन से जमीन पर मध्यम दूरी तक मार सकने वाली मिसाइल का विकास एवं उत्पादन शामिल था। दूसरे चरण में जमीन से हवा में मार सकने वाली मिसाइल, तीसरी पीढ़ी की टैंक भेदी निर्देशित मिसाइल और डॉ. कलाम के सपने री-एंट्री एक्सपेरिमेंट लॉन्च व्हीकल (रेक्स) का प्रस्ताव रखा गया था। जमीन से जमीन पर मार करने वाली मिसाइल प्रणाली को ‘पृथ्वी’ और टेक्टिकल कोर व्हीकल मिसाइल को ‘त्रिशूल’ नाम दिया गया। जमीन से हवा में मार करने वाली रक्षा प्रणाली को ‘आकाश’ और टैंकरोधी मिसाइल परियोजना को ‘नाग’ नाम दिया गया। डॉ. कलाम ने अपने मन में सँजोए रेक्स के बहुप्रतीक्षित सपने को ‘अग्नि’ नाम दिया। 27 जुलाई, 1983 को आई.जी.एम.डी.पी. की औपचारिक रूप से शुरुआत की गई। मिसाइल कार्यक्रम का पहला प्रक्षेपण 16 सितंबर, 1985 को किया गया। इस दिन श्रीहरिकोटा स्थित परीक्षण रेंज से ‘त्रिशूल’ को छोड़ा गया। यह एक तेज प्रतिक्रिया

राष्ट्रपति डॉ. नीलम संजीव रेड्डी से ‘पद्मभूषण’ ग्रहण करते हुए

प्रणाली है, जिसे नीची उड़ान भरने वाले विमानों, हेलीकॉप्टरों तथा विमान-भेदी मिसाइलों के खिलाफ इस्तेमाल किया जा सकता है। 25 फरवरी, 1988 को दिन में 11:23 पर 'पृथ्वी' को छोड़ा गया। यह देश में रॉकेट विज्ञान के इतिहास में एक युगांतकारी घटना थी। यह 150

"जब एक रूसी कंपनी एन.पी.ओ. मशीनोस्ट्रोइनिया ने एक विमान-भेदी पराध्वनिक क्रूज मिसाइल विकसित करने के लिए डी.आर.डी.ओ. से साथ संयुक्त रूप से कार्य करने का प्रस्ताव रखा तो डॉ. कलाम ने सरकार को इस प्रस्ताव को स्वीकार करने तथा संयुक्त प्रयास में निवेश करने के लिए प्रेरित किया। फरवरी 1998 में भारत और रूस के बीच समझौते के अनुसार भारत में ब्रह्मोस प्राइवेट लिमिटेड की स्थापना की गई। 'ब्रह्मोस' एक पराध्वनिक क्रूज मिसाइल है, जो धरती, समुद्र, उपसागर तथा वायु आधारित विभिन्न माध्यमों से प्रक्षेपित किए जाने में सक्षम है।"

किलोमीटर तक एक हजार किलोग्राम पारंपरिक युद्ध विस्फोटक सामग्री ले जाने की क्षमता से युक्त जमीन से जमीन पर मार करने वाली मिसाइल है। 22 मई, 1989 को 'अग्नि' का प्रक्षेपण किया

गया। यह लंबी दूरी के फ्लाइट ह्वीकल्स के लिए एक प्रौद्योगिकी प्रदर्शक है। साथ ही, 'आकाश' 50 किलोमीटर की अधिकतम अंतर्रोधी दूरी वाली मध्यम वायु-रक्षा प्रणाली है। जब एक रूसी कंपनी एन.पी.ओ. मशीनोस्ट्रोइनिया ने एक विमान-भेदी पराध्वनिक क्रूज मिसाइल विकसित करने के लिए डी.आर.डी.ओ. से साथ संयुक्त रूप से कार्य करने का प्रस्ताव रखा तो डॉ. कलाम ने सरकार को इस प्रस्ताव को स्वीकार करने तथा संयुक्त प्रयास में निवेश करने के लिए प्रेरित किया। फरवरी 1998 में भारत और रूस के बीच समझौते के अनुसार भारत में ब्रह्मोस प्राइवेट लिमिटेड की स्थापना की गई। 'ब्रह्मोस' एक पराध्वनिक क्रूज मिसाइल है, जो धरती, समुद्र, उपसागर तथा वायु आधारित विभिन्न माध्यमों से प्रक्षेपित किए जाने में सक्षम है।

वर्ष 1990 के गणतंत्र दिवस पर राष्ट्र ने अपने मिसाइल कार्यक्रम की सफलता पर खुशी मनाई। डॉ. कलाम और डॉ. अरूणाचलम को 'पद्म विभूषण' से सम्मानित किया गया। अक्तूबर 1992 से दिसंबर 1999 तक रक्षा मंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार, डिपार्टमेंट ऑफ डिफेंस रिसर्च एंड डेवलपमेंट ऑर्गेनाइजेशन के सचिव और डिफेंस रिसर्च एंड डेवलपमेंट ऑर्गेनाइजेशन (डी.आर.डी.ओ.) के महानिदेशक के रूप में डॉ. कलाम को अनुसंधान व विकास में सभी प्रयोगशालाओं का मार्गदर्शन करने और फलदायी संभाव्यता वाली परियोजनाओं की प्रगति पर निगरानी रखने का संपूर्ण दायित्व प्राप्त हुआ।

राष्ट्रपति पद के लिए राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के उम्मीदवार के रूप में नामांकित किए जाने का सभी ने स्वागत किया तथा 18 जुलाई, 2002 को डॉ. कलाम को 'भारत का 11वाँ राष्ट्रपति' चुना गया और उन्हें 25 जुलाई, 2002 को राष्ट्रपति पद की शपथ दिलाई गई। इस संक्षिप्त समारोह में तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी, उनके मंत्रिमंडल के सदस्य तथा अधिकारीगण उपस्थित थे। इनका कार्यकाल 25 जुलाई, 2007 को समाप्त हुआ। डॉ. कलाम ने 'Wings of Fire', 'India 2020 : A vision for the Millennium', 'Ignited Minds' जैसी कई प्रसिद्ध पुस्तकें लिखी

राष्ट्रपति डॉ. के.आर. नारायणन से 'भारत रत्न' ग्रहण करते हुए डॉ. कलाम

हैं। उन्हें सन् 1997 में 'भारत रत्न', इंस्टीट्यूशन ऑफ इंजीनियर्स का नेशनल डिजाइन अवार्ड (1980), एरोनॉटिकल सोसाइटी ऑफ इंडिया का डॉ. बिरेन रॉय स्पेस अवार्ड (1986), एस्ट्रोनॉटिकल सोसाइटी ऑफ इंडिया द्वारा सन् 1994 के लिए आर्यभट्ट पुरस्कार (1996), विज्ञान के लिए जी.एम. मोदी पुरस्कार (1996), राष्ट्रीय एकता के लिए इंदिरा गांधी पुरस्कार (1997) जैसे सम्मान मिले।

27 जुलाई, 2015 को शिलांग में सायंकाल डॉ. कलाम का आकस्मिक निधन हो गया। वे भारतीय प्रबंध संस्थान, शिलांग में व्याख्यान दे रहे थे। तभी उन्हें दिल का दौरा पड़ा और तमाम कोशिशों के बावजूद उन्हें बचाया न जा सका। वे जीवन भर सक्रिय रहे। जीवन के हर पल का राष्ट्रहित में उपयोग किया। अंतिम समय में भी वे लोगों को संबोधित करते हुए ही इस दुनिया से विदा हुए।

बलिया के वीर सेनानी रामदहिन ओझा

आजादी की लड़ाई में उत्तर प्रदेश के बलिया का विशेष उल्लेख हुआ करता है। वर्ष 1857 में स्वतंत्रता संग्राम के दौरान बलिया के मंगल पांडेय की प्रथम शहादत हुई, तो 1942 में बंगाल के मेदिनीपुर और महाराष्ट्र के सतारा की तरह बलिया भी कई दिनों तक स्वाधीन रहा। 1942 के नायक चित्तू पांडेय थे। इन दोनों निर्णायक घटनाओं के बीच 18 फरवरी, 1931 को बलिया जेल में मात्र 30 वर्ष के स्वाधीनता सेनानी पंडित रामदहिन ओझा का निधन लगभग भुला ही दिया गया था। हाल के वर्षों में जो शोधपरक जानकारियाँ मिली हैं, उनसे पता चलता है कि बलिया का यह युवा सेनानी राष्ट्रव्यापी पहचान की ओर बढ़ रहा था। यहाँ ओझा के समकालीन और बाद में बलिया में आजादी के आंदोलन पर काम करने वालों का यह तर्क समझ में आता है कि रामदहिन ओझा को अंग्रेज सरकार अपनी सत्ता के लिए अति खतरनाक मानती थी। इसीलिए उनके खाने में धीमा जहर देकर उन्हें मार दिया गया।

पिछली शताब्दी के दूसरे दशक में बलिया के एक पिछड़े कस्बे बांसडीह से शिक्षा के लिए पिता रामसूचित ओझा के साथ कलकत्ता पहुँचे रामदहिन ओझा कैसे राष्ट्रीय पहचान बनाने लगे थे, इसे एक तर्क के साथ समझा जा सकता है। वे कलकत्ता में जल्द ही वहाँ के राष्ट्रवादियों में पहचान रखने लगे थे। 'विश्वमित्र', 'मारवाड़ी', 'अग्रवाल' आदि पत्र-पत्रिकाओं में लेखक के तौर पर उन्हें पढ़ा जाता था। कुछ समय बाद तो उन्होंने स्वयं हिंदी साप्ताहिक 'युगांतर' का संपादन किया। इस पत्र के 1922 से 1924 तक के अंक अब भोपाल स्थित माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। 'युगांतर' के साथ उनके द्वारा संपादित 'शेखावाटी' और 'बलिया समाचार' का उल्लेख विभिन्न कोश जैसे—समाचार पत्रों का इतिहास (अंबिका प्रसाद वाजपेयी), भारतीय पत्रकारिता कोश-भाग 2 (विजयदत्त श्रीधर) और वृहद हिंदी पत्र-पत्रकारिता कोश (सूर्यप्रसाद दीक्षित) आदि में भी किया गया है। युगांतर के हर अंक पर इस 'उद्घोष दोहे' से भला अंग्रेज सरकार रामदहिन ओझा से कैसे रुष्ट नहीं होती—

दासता-पास की लड़ी टूटे,
मुक्त हों हाथ हथकड़ी टूटे।
राष्ट्र का सिंहनाद घर घर हो,
हे प्रभो देश में युगांतर हो।।

रामदहिन ओझा की यह बड़ी पहचान ही थी, जिसकी एक झलक तत्कालीन कलकत्ता में गिरफ्तार पहली महिला स्वतंत्रता सेनानी इंदुमती गोयनका के एक लेख में मिलती है। अपने ससुर, दिल्ली के बड़े स्वतंत्रता सेनानी और समाजसेवी (बाद में मुख्य कार्यकारी पार्षद) केदारनाथ गोयनका पर आई पुस्तक में वह लिखती हैं—'अभी पंडित रामदहिन ओझा की अकाल मृत्यु से हृदय का दुख शांत नहीं हो पाया था कि अकस्मात बहन चमेली देवी के स्वर्गवास का

प्रभात ओझा

शिक्षा : एम.ए., पी-एच.डी.।

लेखन : प्रभात ओझा हिंदी पत्रकारिता क्षेत्र में लंबे समय से सक्रिय हैं। उन्होंने देश के प्रसिद्ध समाचार पत्रों के साथ ही इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में भी काम किया है। वे प्रसिद्ध पाक्षिक 'यथावत' के समन्वय संपादक हैं।

प्रकाशन : हिंदी बुक सेंटर से 'शिवपुरी से श्वालबाख तक', व राष्ट्रीय पुस्तक न्यास से 'गांधी के फीनिक्स' पुस्तक प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल— 8588833175

ई-मेल— ojhaprabhat1@gmail.com

दारुण समाचार अखबारों में पढ़ने को मिला। हृदय को बहुत ही कष्ट हुआ। अभी तो हमने राष्ट्रीय संग्राम का एक ही मोर्चा जीता है। अभी कई मोर्चे जीतने बाकी हैं। ऐसी अवस्था में हमारे बीच में से किसी वीर सैनिक का उठ जाना वास्तव में हमारे लिए दुर्भाग्य का विषय है।"

> **सन् 1921 में जब गांधीजी ने सत्याग्रह का आह्वान किया, तो इसमें शामिल होने वाले बलिया में बांसडीह के सात सत्याग्रही गिरफ्तार किए गए। उन्हें सत्याग्रह के 'सप्तर्षि' की संज्ञा दी गई। रामदहिन ओझा की गतिविधि से परेशान बलिया के जिलाधीश ने 11 मार्च, 1921 को उन्हें तुरंत जिला छोड़ने का आदेश दिया।**

इस वीर सैनिक की स्थानातीत पहचान को स्वयं इंदुमती के विवाह के संदर्भ में भी समझा जा सकता है। रामदहिन ओझा कलकत्ता और दिल्ली के गांधीवादी समाजसेवियों के बीच संपर्क में रहे। अपनी बेटी इंदुमती के विवाह पर चर्चा के दौरान कलकत्ता के प्रसिद्ध समाजसेवी और व्यवसायी पद्मराज जैन सगाई के लिए रुपये भेजने को विकट प्रश्न बताते हैं। इस पर उनके साथ बैठे (बाद में राजनेता) जी.एस. पथिक कहते हैं—"एक रुपया तो भेज ही सकते हैं।" तब पद्मराज जी बोले—"एक रुपया दिल्ली भेज दो।" सब लोग चकित हो गए। यह एक रुपया भी उनके मित्र ने भेजा। कलकत्ता के पद्मराज जैन और दिल्ली के केदारनाथ गोयनका के बीच संबंध सेतु और गोयनका को एक रुपया भेजने वाले पद्मराज जैन के मित्र रामदहिन ओझा ही थे। Kedar Nath Goyenka; Prominent freedom fighter and social reformer के पृष्ठ 279 पर इस संदर्भ का पत्र इस तरह छपा है—

श्रद्धेय,

श्री बाबू पद्मराज जी की ओर से यह एक रुपया मुद्दे का जा रहा है। इससे चिरंजीवी केशवदेव तथा श्रीमती इंदुमती देवी का विवाह संबंध निश्चित समझना चाहिए। आशा है आप स्वीकृति पत्र लौटती डाक से बाबू पद्मराज जी के नाम भेजकर कृतार्थ करेंगे। कल मुरारका जी की ओर से पत्र आपको दिया जा चुका है। मिला होगा।

आपका

रामदहिन ओझा

For बा. पद्मराज जैन

युवा रामदहिन ओझा की यह पहचान वरिष्ठ स्वतंत्रता सेनानियों और समाजसेवियों के बीच यूँ ही नहीं बनी। उन्होंने अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध विद्यार्थियों को संबोधित बाबू महिपाल बहादुर सिंह की कविता का प्रकाशन मात्र 18 वर्ष की अवस्था (1919) में ही कर क्रूर विदेशी शासकों से मोर्चा ले लिया। इसे पूर्वी उत्तर प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों तक में प्रसारित करने के लिए प्रकाशक रामदहिन ओझा ने बांसडीह, बलिया का ही पता दिया। लगता है कि वे तभी से अंग्रेजों की आँख के किरकिरी बन गए थे। उनकी पहली गिरफ्तारी मात्र 20 साल की उम्र (1921) में हुई।

सन् 1921 में जब गांधीजी ने सत्याग्रह का आह्वान किया, तो इसमें शामिल होने वाले बलिया में बांसडीह के सात सत्याग्रही गिरफ्तार किए गए। उन्हें सत्याग्रह के 'सप्तर्षि' की संज्ञा दी गई। रामदहिन ओझा की गतिविधि से परेशान बलिया के जिलाधीश ने 11 मार्च, 1921 को उन्हें तुरंत जिला छोड़ने का आदेश दिया। गाजीपुर पहुँचने पर 15 अप्रैल को गाजीपुर के जिलाधीश ने भी उन्हें जिला छोड़ने को कह दिया। 16 मई, 1921 को उन्हें गिरफ्तार कर छह महीने का कठोर कारावास दिया गया। 30 जनवरी, 1922 को फिर उन्हें पकड़कर एक साल के लिए जेल में डाला गया।

सजा के बाद ओझा जी कलकत्ता वापस गए और वहाँ 'विश्वमित्र' नामक दैनिक समाचार पत्र से जुड़ गए। कुछ समय बाद वे 'युगांतर' नामक साप्ताहिक समाचार पत्र के संपादक बने। फिर 'शेखावाटी' और 'बलिया समाचार' पत्र के संपादक के रूप में भी उनकी कलम अंग्रेजों के विरुद्ध आग उगलती रही। एक उदाहरण देखा जा सकता है, जब युगांतर के संपादकीय में 04 अगस्त, 1924 को उन्होंने लिखा, "मालूम पड़ता है भारतीय सदा गुलाम ही रहना चाहते हैं। वह भी मामूली गुलाम नहीं। संसार के इतिहास में ऐसी गुलामी खोजे नहीं मिलेगी। पशु भी पिंजरे में बंद रहने पर दो बूँद आँसू बहा सकते हैं, पर गुलाम भारतीय दिल खोलकर रो भी नहीं सकते।"

कुछ समय बाद शासन ने रामदहिन ओझा को कलकत्ता भी छोड़ने का आदेश दे दिया। उन्होंने हार नहीं मानी। बलिया पहुँचकर 1930 के नमक आंदोलन में उन्होंने भाग लिया। उन्हें 27 अक्तूबर को गिरफ्तार कर छह माह के कठोर कारावास की सजा दी गई। स्वाधीनता संग्राम में वह उनकी चौथी गिरफ्तारी थी।

अंतिम गिरफ्तारी में 18 फरवरी, 1931 का दिन भी आया, जब रात के अँधेरे में बलिया जेल और वहाँ के जिला प्रशासन ने मृतप्राय सेनानी को उनके मित्र, प्रसिद्ध वकील ठाकुर राधामोहन सिंह के आवास पहुँचा दिया था। उन्हें बचाया नहीं जा सका। बाद में पद्मकांत मालवीय कमेटी ने पाया था कि रामदहिन ओझा के खाने में मीठा जहर दिया जाता रहा। इस तरह यह युवा सेनानी 1931 के प्रारंभ में ही शहीद हो गया। वाराणसी से प्रकाशित 'जनवार्ता' के संपादक रहे ईश्वरदेव मिश्र और 'बलिया में सन् बयालीस की जनक्रांति' के लेखक दुर्गाप्रसाद गुप्त के मुताबिक पंडित रामदहिन ओझा की इस शहादत को गांधी जी के असहयोग आंदोलन में किसी पत्रकार की पहली शहादत माना जाता है। उनके 1921 तथा 1930-31 में देश सेवा के उल्लेखनीय योगदान और बलिदान ने बलिया के सेनानियों में ऐसी ऊर्जा का संचार किया, जिसका प्रस्फुटन 1942 की जन क्रांति में दिखाई देता है। निश्चित ही इसकी प्रेरणा पंडित रामदहिन ओझा जैसे सेनानियों से भी मिली होगी।

नागपुर की डायमंड क्रॉसिंग

जब एक रेलवे लाइन दूसरी रेलवे लाइन को काटते हुए निकल जाती है, 'डायमंड क्रॉसिंग' कहलाती है। चाहे वह एक समान प्रकार का गेज हो या किसी और प्रकार के गेज वाली हो। डायमंड क्रॉसिंग छह प्रकार के होते हैं। यदि 90 डिग्री पर काटते हैं तो स्वाभाविक रूप से उसे 'स्क्वायर डायमंड क्रॉसिंग' कहते हैं। वर्ष 1887 में नागपुर में कुल 27 डायमंड क्रॉसिंग थे जो अब कम होकर केवल सात रह गए हैं। वर्ष 1867 में नागपुर में मीटर गेज लाइन बनाई गई थी जिसे वर्ष 1888 में गेज परिवर्तन करके बड़ी लाइन बना दी गई। अभी के चार डायमंड क्रॉसिंग को वर्ष 1924 में बनाया गया था

जिसमें समय-समय पर सुधार होता रहा है। वर्ष 1989 में इस रेल लाइन का विद्युतीकरण हुआ था। इसके क्रॉसिंग के ऊपर बिजली के तारों को विशेष रूप से बनाया गया है जिससे कि ये आपस में एक-दूसरे को स्पर्श करके शार्ट न करें। दिल्ली से आने वाली और चेन्नई जाने वाली डबल लाइन को नागपुर स्टेशन पर प्रवेश करने से एक किमी. पहले दो भागों में विभाजित कर दिया जाता है जिसमें से डबल लाइन वाला एक भाग नागपुर स्टेशन चला जाता है, जबकि दूसरा डबल लाइन वाला भाग नागपुर गुड्स यार्ड में चला जाता है। इस पर केवल मालगाड़ी ही चलती है। यही मालगाड़ी वाली डबल लाइन, मुंबई से हावड़ा जाने वाली ट्रंक रुट वाली डबल लाइन को काटती है, जिसके कारण यहाँ एक साथ चार डायमंड क्रॉसिंग बनते हैं। हावड़ा वाली मेन लाइन हावड़ा के तरफ चली जाती है, जबकि मालगाड़ी वाली दोनों लाइनें नागपुर गुड्स यार्ड होते हुए अजनी में जाकर मेन लाइन में जुड़ जाती हैं। हावड़ा वाली लाइन आगे चार-पाँच किमी. तक अप और डाउन लाइन के लिए कॉमन रहती है। मतलब दोनों लाइन को अप-डाउन के हिसाब से उपयोग करते हैं, लेकिन उसके आगे अप-डाउन लाइन अलग-अलग हो जाती है। हावड़ा वाली इसी लाइन से डायमंड क्रॉसिंग से थोड़ी आगे एक रेल लाइन निकलकर मोतीबाग कारखाना में चली जाती है। अब आते हैं चेन्नई मार्ग पर। यह स्पष्ट है कि नागपुर से कोई रेल लाइन सीधे चेन्नई नहीं जाती है, बल्कि सेवाग्राम जंक्शन रेलवे स्टेशन नागपुर से 76 किमी. आगे पड़ता है। वहाँ से मेन लाइन चेन्नई के लिए जाती है।

विमलेश चंद्र

शिक्षा : इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग एवं रेल ट्रांसपोर्ट तथा मैनेजमेंट में डिप्लोमा।

प्रकाशन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञान, तकनीक, इंजीनियरिंग, गणित, साहित्य, व्यंग्य तथा रेल विषय पर 550 से अधिक रचनाएँ प्रकाशित। उपकार प्रकाशन से 'भारतीय रेल : एक परिचय' और राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से 'भारतीय रेल के अनोखे पुल' पुस्तक प्रकाशित।

पुरस्कार : रेलवे के क्षेत्रीय स्तर पर हिंदी तथा लेखन क्षेत्र में कई पुरस्कार।

संपर्क : मोबाइल : 9574011888

ई-मेल : vimleshchandra.awmbvp@gmail.com

इसे डायमंड क्रॉसिंग का केंद्र माना जाए या न माना जाए। इसे केंद्र मानना जरूरी नहीं है। जैसे कि पहला मार्ग मतलब दिल्ली-चेन्नई मार्ग में देखें तो दिल्ली-इटारसी-नागपुर-सेवाग्राम-विजयवाड़ा-चेन्नई पड़ता है तो दूसरी तरफ पश्चिम में मुंबई से होते हुए मुंबई-जलगाँव-वर्धा-नागपुर-गोंदिया-बिलासपुर-हावड़ा मार्ग पड़ता है तो नागपुर दोनों मार्ग में आ रहा है। इसलिए इसे सेंटर पॉइंट मान सकते हैं। तो यह है इसकी पूरी कहानी का रहस्य। गुड्स यार्ड की मालगाड़ी के लिए एक और बात। दिल्ली या इटारसी के तरफ से आने वाली मालगाड़ी तो डायमंड क्रॉसिंग करके आगे गुड्स यार्ड में चली जाती है और इसका ठीक विपरीत भी यही है कि गुड्स यार्ड से आकर डायमंड क्रॉसिंग से होते हुए इटारसी-दिल्ली की तरफ चली जाती है। लेकिन यदि गुड्स यार्ड में कोई मालगाड़ी बनकर तैयार होती है और उसे अजनी की तरफ जाना है तो नागपुर स्टेशन को बाईपास करते हुए अजनी या जलगाँव की तरफ बिना कोई दिक्कत के चली जाएगी। लेकिन यदि उसे हावड़ा के तरफ जाना हो तो वह डायमंड क्रॉसिंग तक तो आएगी नहीं। इसलिए एक या आधा किमी. जितनी लंबी लाइन गुड्स यार्ड से सीधे निकलकर आगे हावड़ा लाइन में मिल जाती है। मतलब उसे डायमंड से कोई लेना-देना नहीं है। ठीक इसी तरह हावड़ा से नागपुर गुड्स यार्ड तक आने वाली गाड़ी की रहती है। लेकिन रात्रि में जब यात्री गाड़ी कम रहती हैं तो हावड़ा से आने या जाने वाली मालगाड़ियाँ नागपुर स्टेशन से सीधे मेन लाइन से आती-जाती हैं। इसी तरह कंटेनर जैसी महत्वपूर्ण मालगाड़ियों को जो दिल्ली की तरफ से नागपुर आ रही हैं और जिसे जल्दी आगे सेवाग्राम या चेन्नई की तरफ पहुँचाना रहता है, उन्हें सीधा मेन लाइन से लेकर नागपुर स्टेशन के थ्रू लाइन पर लाया जाता है। मतलब उन्हें गुड्स यार्ड के तरफ नहीं भेजा जाता है, बल्कि एक्सप्रेस यात्री गाड़ी के मार्ग पर लेते हुए थ्रू रेल लाइन पर ले लिया जाता है।

आखिर कैसे विद्युत आपूर्ति मिलती है नागपुर डायमंड क्रॉसिंग के ऊपर लगे चारों बिजली लाइन (OHE) को

बिजली रेल इंजनों के लिए 25 KV/AC प्रणाली विद्युत आपूर्ति दी जाती है। यहाँ नागपुर के डायमंड क्रॉसिंग के ऊपर भी बिजली लाइनें

हैं और सभी बिजली लाइन एक-दूसरे के पास में हैं, लेकिन इन्हें आइसोलेटर और जंपर से अलग कर दिया गया है। लेकिन बिजली आपूर्ति सभी चार लाइनों में है। मुंबई-हावड़ा मार्ग के लाइन में जाने वाली गाड़ियों का इस सेक्शन में आने पर इंजन का पेंटोग्राफ डाउन कर दिया जाता है। जबकि गुड्स यार्ड वाली लाइन पर इंजन साधारण रूप से पेंटोग्राफ और बिजली के तार आपस में छूकर चलते हैं। हावड़ा वाले मार्ग में मालगाड़ी सहित अनेक रेलगाड़ियाँ चलती हैं, जबकि गुड्स यार्ड वाली लाइन में 24 घंटे में तीन या चार मालगाड़ियाँ चलती हैं। लेकिन अब इसमें सुधार किया जा रहा है, जिससे हावड़ा वाली लाइन पर इंजन का पेंटोग्राफ डाउन नहीं करना पड़ेगा, बल्कि यार्ड वाली लाइन से जाने वाले बिजली इंजन का पेंटोग्राफ डाउन करना पड़ेगा। इस तरह से बिजली आपूर्ति का यह सिस्टम भी काफी रोचक है।

डायमंड क्रॉसिंग के रहस्य का निष्कर्ष

पहली बात यह कि इस डायमंड क्रॉसिंग में डबल लाइन वाली एक ट्रैक मालगाड़ी का ट्रैक है जो सीधे चेन्नई मार्ग से कतई नहीं जुड़ती है, बल्कि यह लाइन नागपुर गुड्स यार्ड जाती है। फिर वहाँ से

अजनी जाती है और फिर वहाँ मेन लाइन से मिलकर सेवाग्राम जाती है। फिर वहाँ से चेन्नई के लिए अलग होती है, लेकिन नागपुर स्टेशन को भारतीय रेल का मध्य पॉइंट मान सकते हैं। जैसे कि दिल्ली (नार्थ इंडिया)-चेन्नई (साउथ इंडिया) के ट्रंक मार्ग को और मुंबई (वेस्टर्न इंडिया)-हावड़ा (ईस्ट इंडिया) के ट्रंक मार्ग में नागपुर स्टेशन जरूर आता है तो निस्संदेह नागपुर को मध्य पॉइंट जरूर मान सकते हैं जैसा कि यहाँ के 'जीरो माईल्स' को भारत का मध्य पॉइंट बोलते हैं या बोलते थे। यदि चाहें तो इस डायमंड क्रॉसिंग को मध्य पॉइंट मान सकते हैं, क्योंकि भले ही यह कुछ खंड मालगाड़ी का ट्रैक है। लेकिन है तो भारतीय रेल का ट्रैक ही। जो भले ही सीधे चेन्नई मार्ग से नहीं मिलता है, लेकिन सेवाग्राम में जाकर मिल ही जाता है।

पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानियों में हिमाचली लोक साहित्य की प्रासंगिकता

हिंदी के अनन्य आराधक और मौलिक प्रतिभा के धनी अमर कहानीकार पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी जी का जन्म 25 आषाढ़ संवत् 1940 (तद्नुसार 07 जुलाई, 1883) को पंडित शिवराम शास्त्री व श्रीमती लक्ष्मी के घर हुआ। गुलेरी जी के पूर्वज मूलतः गुलेर, जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश थे। इनके पिता पंडित शिवराम शास्त्री आजीविका से बँधे जयपुर चले गए। गुलेरी जी का संस्कृत, पाली, प्राकृत, हिंदी, बांग्ला, अंग्रेजी, लैटिन और फ्रेंच आदि भाषाओं पर समान अधिकार था। अभी गुलेरी जी 10 वर्ष के ही थे कि उन्होंने एक बार संस्कृत में भाषण देकर भारत धर्म महामंडल के विद्वानों को आश्चर्यचकित कर दिया था। उन्होंने सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थीं। बी.ए. की परीक्षा में सर्वप्रथम रहे। सन् 1904 में गुलेरी जी मेयो कॉलेज अजमेर में अध्यापक बन गए। अध्यापक के रूप में उनका बड़ा मान-सम्मान था। अपने शिष्यों में वे बहुत लोकप्रिय थे। वे अनुशासन के नियमों का भी सख्ती से अनुपालन करते। उनकी असाधारण योग्यता से प्रभावित होकर मदन मोहन मालवीय ने उन्हें बनारस बुला भेजा और हिंदी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर का कार्यभार सौंपा।

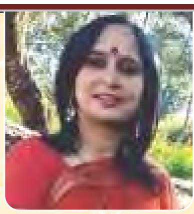

डॉ. अदिति गुलेरी

जन्म : 30 मार्च, 1977

प्रकाशन : 'बात वजूद की', 'कसक बाकी है', 'व्योम तक उड़ान' जैसे कई काव्य संग्रह प्रकाशित, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ, कहानियाँ व आलेख प्रकाशित। आकाशवाणी धर्मशाला तथा गुंजन रेडियो से वार्ताएँ, कविताएँ एवं कहानियाँ प्रसारित।

संपर्क : मोबाइल– 9816305643

ईमेल– aditiguleri12345@gmail.com

निबंधकार के रूप में भी गुलेरी जी बड़े प्रसिद्ध रहे हैं। इनके निबंधों की संख्या 100 से अधिक है। सन् 1903 में जयपुर से जैन वैद्य के माध्यम से 'समालोचक' पत्र प्रकाशित होना शुरू हुआ था। इसी पत्र में वे संपादक रहे। इन्होंने पूरे मनोयोग से 'समालोचक' में अपने निबंध और टिप्पणियाँ देकर उसे जीवंत बनाए रखा। इनके निबंधों के अधिकतर विषय इतिहास, दर्शन, धर्म, मनोविज्ञान और पुरातत्व संबंधी हैं। शैशुनाक की मूर्तियाँ, देवकुल, पुरानी हिंदी, संगीत, कछुआ धर्म, आँख, मारे सी मोदि कुठाऊँ और सोऽहम जैसे निबंध पर उनकी विद्वत्ता की अमिट छाप छोड़ी। बहुमुखी प्रतिभासंपन्न सरस्वती पुत्र चंद्रधर शर्मा गुलेरी का 39 वर्ष की अल्पायु में 12 सितंबर, 1922 को काशी में निधन हो गया।

अपने गाँव गुलेर के प्रति गुलेरी जी का गहन आकर्षण था। गुलेरी जी के पिताजी ने इनका विवाह हरिपुर निवासी 'कवि रैणा' की पुत्री पद्मावती से लगभग 20-22 वर्ष की अवस्था में कर दिया। इस आशंका से कि उनके उत्तराधिकारी ग्राम-मोह छोड़कर मारवाड़ी न बन जाएँ, गुलेरी जी के पिता शिवराम जी महाराज ने जयपुर राज्य द्वारा प्रदत्त जागीर को भी अस्वीकार कर दिया था। गुलेरी जी पिता के देहावसान के पश्चात हर वर्ष छुट्टियाँ बिताने गुलेर आया करते थे। गुलेरी जी ने जब लिखना शुरू किया तो अपने साथ गाँव का अन्योन्याश्रित संबंध दिखाकर गुलेर से 'गुलेरी' उपनाम को धारण कर लिया। इस प्रकार गुलेरी जी ने अपने नाम के साथ-साथ अपने गाँव 'गुलेर' का नाम भी

सदैव के लिए साहित्य-संसार में अमर-अटल कर दिया। अपने गाँव के प्रति यह साहित्यिक मौन समर्पण हिमाचल वासियों को सदैव याद रहेगा। गुलेरी जी अपने भाई-बहनों से बहुत प्रेम किया करते थे। उन्हें सभी भाई-बहन 'बड़ा भाऊ' या 'ज्येष्ट' कहकर पुकारते। सब के दुख में दुखी और सब के सुख में सुखी होने वाले गुलेरी जी अपने सुख में सब को भागीदार समझते थे। आदर्श पुत्र और सफल गृहस्थ, विनोद प्रिय, आडंबरहीन और प्रदर्शन शून्य उनके व्यक्तित्व में शामिल था। वे कथनी और करनी में दृढ़ थे। वचनबद्धता तो जैसे उनकी नस-नस में रची हुई थी। वे अजातशत्रु थे। अपना समय और अर्थ नष्ट करके भी वे मैत्री का नाता निभाने में तत्पर रहते। इस संबंध में बाबू श्यामसुंदर दास जी का कथन दृष्टव्य है—"गुलेरी जी का स्वभाव बड़ा सरल, निष्कपट और आडंबरहीन था। मित्रता के नाते को निभाना ये खूब जानते थे।" मित्रों के लिए तो वे कल्पतरू थे और उनके प्रत्येक कार्य में हाथ बँटाते थे। स्वयं तो उन्हें साहित्य प्रकाशन से अर्थ-प्राप्ति या यश कमाने का जैसा कोई लालच ही न था। वे दूसरों के प्रेरणास्रोत रहे।

हिंदी के साहित्याकाश के ध्रुव श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी जी की 'उसने कहा था' कहानी सन् 1915 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। यह कहानी न केवल मुक्त कंठ से सराही गई, प्रत्युत कलात्मकता की दृष्टि से इसे अद्वितीय कहानी घोषित किया गया। इन्हीं दिनों कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद की कहानियाँ भी प्रकाशित होने लगी थीं। उनकी सर्वप्रथम 'पंच परमेश्वर' कहानी 'सरस्वती' में सन् 1916 में प्रकाशित हुई। कहानी-कला और शिल्प-विधि-विकास क्रम में प्रसाद और प्रेमचंद से पहले गुलेरी जी का स्थान निश्चय ही महत्वपूर्ण है। गुलेरी जी की कहानियाँ कला के विकास के सिंहद्वार हैं। प्रभाव व प्रेरणा और साहित्यिक उद्वेलन की दृष्टि से इनका एकांत स्वतंत्र स्थान तो है ही। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से गुलेरी जी की कहानियों का पृथक रूप से अध्ययन, अनुशीलन एवं विवेचन-विश्लेषण अपना अलग मूल्य रखता है। गुलेरी जी का कहानी साहित्य उनकी मात्र तीन कहानियों 'सुखमय जीवन' (सन् 1911), बुद्धू का काँटा (1911-1915 के मध्य) और 'उसने कहा था' (सन् 1915) से पुष्ट है। ये तीनों कहानियाँ उनका प्रामाणिक कहानी संसार है। ये तीनों चरित्र प्रधान कहानियाँ हैं। इनमें अन्य सामाजिक मान्यताओं के अतिरिक्त संवेदनाएँ, प्रेम और कर्तव्य को लेकर सामने आई हैं। गुलेरी जी के वंशजों में डॉक्टर पीयूष गुलेरी व प्रत्यूष गुलेरी ने गुलेरी जी की केवल तीन कहानियों को प्रामाणिक व स्वीकृत किया गया। उन्होंने तमाम भ्रांतियों को नकार दिया क्योंकि गुलेरी जी यत्र-तत्र कागज पत्रों, डायरियों, पन्नों व छोटी-छोटी कतरनों पर निजी नोट्स लेते रहते थे। कुछ साहित्यकारों द्वारा इन्हीं नोट्स में से कुछ नोट्स निकाल इन्हें कहानियों का नाम दे दिया गया।

गुलेरी जी की कहानियों में हिमाचली लोक-साहित्य की प्रासंगिकता दृष्टिगत होती है। उनकी अमर कहानी 'उसने कहा था' में यहाँ-वहाँ हिमाचली बोली के आंचलिक शब्द मोतियों की तरह पिरोए गए हैं। इनकी कहानियों में कुड़माई, सुथने, सालू, बाधा, झटका, सिगड़ी, बूटे, बाड़ी, 10 घुमा, लाडी, दोरा (आदर सूचक शब्द) पंक्चर, पट्टी, ओबरी, कोलों पट्ट, हाड़, हुज, ओये, हैं, लाणा, आदि अनेक शब्द आए हैं। 'उसने कहा था' की ये चंद पंक्तियाँ आपके समक्ष हैं—

दिल्ली शहर ते पिशौर नु जांदिए,
कर लेणा लौगां दा बपार मड़िए,
कर लेणा नाड़े दा सौदा अड़िए,
(ओय) लाणा चटाका कदुए नुं
कद्दू बणया वे मजेदार गोरिए
हुण लाणा चटाका कदुए नुं

गुलेरी जी की कहानियों की भाषा बहुत ही सजीव, स्वाभाविक और मन को छूने वाली है। देशकाल पात्रों और परिस्थिति के अनुकूल भाषा का जो प्रयोग उन्होंने किया, वह अन्यत्र देखने को नहीं मिलता है। भाषा पर अधिकार होने के कारण कहानियों में स्वाभाविकता और प्रवाह दोनों तत्व समाहित हो गए हैं। 'उसने कहा था' कहानी के आरंभ में पंजाबी, हिमाचली बोलियों का मिश्रण भी कलात्मक ढंग से उद्‌घाटित हुआ है। शैली के व्यापक प्रकाश में भी गुलेरी जी ने अपनी कहानियों के निर्माण में उदारता बरती है। 'बुद्धू का काँटा' कहानी का चरमोत्कर्ष मनोभावों के परिप्रेक्ष्य में गुरुतर है। यथा—"मैं तो अनाड़ी हूँ। मुझे लल्लू-पत्तों करना नहीं आता। साफ कहना जानता हूँ, सुनो। यह कहकर रघुनाथ आगे बढ़ा और उसने उसके दोनों हाथ पकड़ लिए। उसने हाथ नहीं हटाए। उस समय मैं जंगली था, वहशी था, अधूरा था। मनुष्य जब तक स्त्री की परछाई नहीं पा लेता है, तब तक वह पूरा नहीं होता। मेरे बुद्धूपन को क्षमा करो। मेरे हृदय में तुम्हारे प्रेम का एक भयंकर काँटा गड़ गया है।"

भाषा और शैली की तरह गुलेरी जी की कहानियों में सफल कथोपकथनों की सृष्टि हुई है। उनके ये कथन हृदय पर अमिट प्रभाव छोड़ने में सक्षम है। यथा 'उसने कहा था' में लहना सिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा—"अपने लाडो के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा। लाड़ो होरा को भी बुला लोगे? या दूध पिलाने वाली फिरंगी मैम।"

गुलेरी जी की कहानियों में अनुभूति की अंतःसलिला गहरी संवेदना बनकर अवस्थित है। यही कारण है कि कहानीकार ने विभिन्न संयोगों और घटनाओं का सहारा लेकर कहानियों को एक निश्चित लक्ष्य तक पहुँचाया है और अंत में सामाजिक आदर्शों की प्रतिष्ठा की है।

गुलेरी जी की कहानियाँ, कथा विन्यास, चरित्र-चित्रण, भाषा, शैली, उद्‌देश्य, कथन एवं हिमाचली लोक-साहित्य की दृष्टि से अद्वितीय हैं। उनका प्रभाव चिरस्थायी होता है और बार-बार पढ़ने पर भी सदैव ताजगी लिए हमारे समक्ष उपस्थित होती हैं। ये नित नई हैं। इनकी अमरता सदैव बनी रहेगी।

आओ भारतीय भाषाएँ सीखें

हिंदी	संस्कृतम्	पंजाबी	उर्दू	कश्मीरी	सिंधी	मराठी	कोंकणी	गुजराती	नेपाली	बांग्ला
फल	**फलानि**	**फल**	**फल**	**म्युव**	**फलु, मेवो**	**फळे**	**फळ**	**फळ**	**फल**	**फल**
अंगूर	द्राक्षा	अंगूर	अंगूर	दछ	अंगूरु	द्राक्ष	द्राक्षां	लीली द्राक्ष	अङ्गुर	आंगुर
अंजीर	अञ्जीरम्	अंजीर	अंजीर	अंजीर	अंजीरु	अंजीर	अंजीर	अंजीर	अन्जीर	आञ्जीर
अनन्नास	आपसनम्	अनानास	अनन्नास (अनानास)	अननास	अनासु	अननस	अनस, अननस	अनानस	भुईंकटहर, अनारस	आनारस
अनार	दाडिमः	अनार	अनार	दॉन	डा॒ढूं	डाळिंब	दाळींब	दाडम	अनार	डालिम, आनार, बेदाना
अमरूद	पेरुकम्	अमरूद	अमरूद	अमरूद	ज़ेतूनु	पेरू	पॅर	जमरुख, जामफल	अम्बा, लताम, बेलौती	पेयारा
केला	कदलीफलम्	केला	केला	केल	केलो	केळे	कॅळे	केळुं	केरा	कला
खरबूजा	खर्बूजम्	खरबूजा	ख़रबूज़ा	खरबुज़	गिदिरो, खरिबूजो	खरबूज	चिबड, चिबूड	खडबूच, खडबूचुं	खरबुजो	खरमुज, खरबुज
चीकू	चिकूलम्	चीकू	चीकू	चीकू	चकूं, चीकू	चिकू	चिकू	चीकू	सपाटो, चिखु	सफेदा, सबेदा
जामुन	जम्बूफलम्	जामणु, जामण	जामुन	जामन	ज॒मूं	जांभुळ	जांबळ	जांबु	जामुनु, जामूनो	जाम
तरबूज	कालिङ्गम्	हदवाणा, तरबूज	तरबूज़	ह्यंदव्यन्द	हिंदाणो, छाहीं	टरबुज	कालिंगण	तरबूच, तड़बूच	तरबुजो	तरमुज
नारियल	नारिकेलम्	नारियल	नारियल	खूपर, नारजील	नारेलु	नारळ	नाल	नारियेळ (नारियेल)	नरिवल	नारकेल, नारिकेल
पपीता	स्थूलैरण्डः	पपीता	पपीता	पॅपीत	पपयो, पपीतो	पपई	पपाय	पपैयुं	मेवा, पपिता	पेंपे

असमिया	मणिपुरी	ओड़िआ	तेलुगू	तमिल	मलयालम	कन्नड़	डोगरी	संताली	मैथिली	बोड़ो
फल	**उहै**	**फल**	**पंड्लु**	**पऴंगऴ्**	**पऴङ्ङऴ्**	**हण्णुगळु**	**फल**	**जो**	**फल**	**फिथाइ**
आङुर	अंगुर	अंगुर	द्राक्ष	दिराट्चैपऴम्	मुंतिरिङ्ङ	द्राक्षि	डूर, अंगूर	आँगुर	अंगूर	आङुर
डिमरु	हैबोङ पाम्बी मखल अमा	डिमिरि	अत्तिपंडु	अत्तिप्पऴम्	अत्तिप्पऴम्	अंजूर	अंजीर	लोवा	अंजीर	दुमब्रु
आनारस	किहोम	सपुरिपणस	पाइनेपिल्	अन्नासिप्पऴम्	पृत्तिच्चक्क, अन्नारच्चक्क	अनानस्	अनानास	आनारस	सफरी कटहर	राइमालि, आनारस
डालिम बेदाना	कमफोइ, काफोइ	डालिंब	दानिम्मम	मादुळंपऴम्	मातळम्	दाळिंबे	(अ) नार	बेदाना	दाड़िम, बेदाना	दालिम, आनार
मधुरि-आम	पुङ्दोल	पिजुलि	जाम	कोय्याप्पऴम्	पेरक्क	सीबे	मरुद, अमरूद	आँजरि, सापारि	लताम	सुमफ्राम, थाम, सौफारि
कल	लफोइ	कदली	अरटि	वाऴैप्पऴम्	वाऴप्पकम्	बाळेहरण्णु	केला	कायरा	केरा	थालेर
छिराल, खरमुज	खरबूजा	खरबुज	खर्बूजा	मुलाम् पऴम्/ किर्नी पऴम्	वेळळत्तण्णि-मत्तन्	कल्लंगडि	खरबूजा	खरबुज	पहलेज	थरमुस
चपेटा, चिक्कु	चीकू	सपेटा	सपोटा	सप्पोटटा पऴम	सपोट्ट	सपोटा, चिखु	चीकू	सफेदा	सपाटू	सफेथा
जामु	जाम	जामु कोलि	नेरेडु	नावल् पऴम्/ नागप्पऴम्	ञावल्	नेरळे हण्णु	ढल्ला	कूद	जामु, जामुन	जाम्बु
तरमुज	तरबूज	तरबुज	पुच्च-काय	तरबूज पऴम्	तण्णिमत्तन्	कल्लंगणि -हण्णु	दुहाना	तरभुज	तारभुज	थरमुस
नारिकल	यूबी	नडिआ	कोब्बरि-काय	तेङ्गाय्	तेङ्ङ नाळिकेरम्	तेंगिनकायि	नरेल, नारियल	नाइकोल, नारकेल	नारिकेर	नालेंखर
अमिता	अवाथबी	अमृतभंडा	बोप्पायि	पप्पाळि पऴम्	पप्पय्क्क, ओमक्क	परंगि हण्णु, पप्पई हण्णु	पपीता	पिपा	पपीता, अरनेबा	मैथ्रु, मोदोमफुल

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रकाशित भारतीय भाषा कोश से साभार)

अफगानिस्तान में आधुनिक शिक्षा के सौ साल

अमेरिकी सेना के बीस वर्ष तक अफगानिस्तान में रहने और उनकी वापसी के बाद अफगानिस्तान एक बार फिर हिंसा की चपेट में है। ऐसे में वहाँ के शिक्षा तंत्र का आकलन।

प्रायः शिक्षण संस्थानों के जरिये अपना आधिपत्य जमाने के लिए सरकारें विद्यालय-विश्वविद्यालय तक के पाठ्यक्रम, पढ़ने-पढ़ाने की भाषा, पाठ्यपुस्तक, अध्यापक प्रशिक्षण, बजट और मूल्यांकन आदि प्रक्रियाओं को नियंत्रित करना चाहती हैं। अलग-अलग विचारधाराएँ और अभिजन समूह सरकार के जरिये सत्ता हासिल करते हैं और शिक्षा संस्थानों में अपनी विचारधारा का प्रत्यारोपण करते हैं। अफगानिस्तान में पिछले 100 वर्षों में शिक्षा का विकास पुरातनपंथी धार्मिक समूहों और उदारवादी

आधुनिक समूहों के बीच के वर्चस्व की लड़ाई से प्रभावित रहा है। अफगानिस्तान में मदरसा शिक्षा की शुरुआत सातवीं शताब्दी में इस्लाम के आगमन के साथ हुई थी। धीरे-धीरे जैसे इस्लाम का देश में विस्तार हुआ, मदरसा शिक्षा का भी विस्तार होता गया। आज भी मदरसा शिक्षा व्यवस्था और आधुनिक शिक्षा व्यवस्था दोनों से ही छात्र डिग्री लेते हैं और बहुतायत मदरसे, सरकारी नियंत्रण से बाहर हैं। विचारधारा के स्तर पर अफगानिस्तान के बहुसंख्यक मदरसे देवबंदी धारा के हैं और उनका वित्तीय प्रबंधन सामाजिक सहयोग से होता है।

अफगानिस्तान में आधुनिक स्कूली व्यवस्था की शुरुआत 1901 में गद्दी पर बैठे अब्दुर रहमान के पुत्र हबीबुल्लाह के द्वारा हुई। 1903 में काबुल में, पहले आधुनिक विद्यालय हबीबिया हाई स्कूल की स्थापना प्रशासनिक और सैन्यकर्मियों को तैयार करने के लिए की गई थी। इस विद्यालय के शिक्षकों में अफगानिस्तान के अलावा भारत और अन्य देशों के शिक्षक भी नियुक्त किए गए थे (Clements, F.A. & Adamec, L.W. 2003)। हबीबुल्लाह के शासन काल में बहुत से अफगान जो सुधारवादी थे और अफगानिस्तान से बाहर निर्वासित जीवन जी रहे थे, उनको देश में वापस लाया गया। उन्हीं में से एक महमूद तरजी ने वापस आकर अफगानिस्तान में समाचार-पत्रों की शुरुआत की। समाचार-पत्र हबीबुल्लाह के शासन काल की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि कही जाती है।

हबीबुल्लाह के बाद उसके पुत्र अमानुल्लाह खान ने 1919 से 1929 के बीच अफगानिस्तान में शासन किया। इस दौरान आधुनिक शिक्षा में बहुत से नए प्रयास किए गए। अंग्रेजी, जर्मन और फ्रेंच माध्यम के विद्यालय खोले गए। लड़कियों के लिए

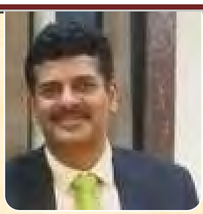

संजीव राय

शिक्षा : उच्च शिक्षा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय से।

संप्रति : लेखक, शिक्षाविद हैं और वर्तमान में टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, मुंबई के साथ एडजंक्ट प्रोफेसर के रूप में संबद्ध हैं। स्कूली शिक्षा के मुद्दे पर, भारत, क़तर और अफगानिस्तान में कार्य का अनुभव। अफगानिस्तान में एक संस्था के शिक्षा सलाहकार रहे हैं।

लेखन : नेपाल के जनयुद्ध और सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन में शिक्षा की भूमिका पर चर्चित पुस्तक–'कनफ्लिक्ट, एजुकेशन एंड पीपुल'स वॉर इन नेपाल' के लेखक।

संपर्क : मोबाइल– 9818721112
ईमेल– sanj.2402@gmail.com

पहला बालिका विद्यालय (मस्तूरात स्कूल), काबुल में 1921 में खोला गया। 1919 से 1929 के बीच में, 300 से अधिक विद्यालय खोले गए, लड़कियों की शिक्षा पर विशेष जोर दिया गया। देश में पहली बार एक महिला को शिक्षा मंत्री बनाया गया और यह जिम्मेदारी बेगम सुरैया को सौंपी गई। आधुनिक स्कूली शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ ही मेडिकल और विश्वविद्यालय की शिक्षा के विस्तार की योजना बनाई गई। आठ लड़कियों का एक दस्ता नर्सिंग के प्रशिक्षण के लिए तुर्की भेजा गया। कुछ छात्रों को स्विट्जरलैंड, जर्मनी, इंग्लैंड आदि देशों में उच्च शिक्षा के लिए भेजा गया।

बादशाह अमानुल्लाह खान आधुनिक विचारधारा के समर्थक थे और वे अफगानिस्तान को एक आधुनिक राष्ट्र बनाना चाहते थे। इसी क्रम में उन्होंने महिलाओं के लिए परदा-प्रथा की अनिवार्यता को खत्म कर दिया था। उन्होंने पुरुषों, विशेषरूप से सरकारी कर्मचारियों के लिए पश्चिमी पोशाक का चलन शुरू किया था, जिससे विदेशी मेहमान अफगानिस्तान को एक आधुनिक समाज के रूप में देख सकें। अफगानिस्तान जैसे एक परंपरागत समाज में व्यापक बदलाव की यह मुहिम धार्मिक नेताओं को स्वीकार नहीं हुई। उलेमाओं ने बादशाह अमानुल्लाह पर धर्मविरोधी गतिविधियों को बढ़ावा देने का आरोप लगाया। साथ ही पश्तून के सिनवारी कबीले और खोस्त के विद्रोहियों ने ऐसी विषम राजनीतिक परिस्थितियाँ पैदा कर दीं, जिससे मई 1929 में बादशाह अमानुल्लाह को परिवार सहित देश छोड़ना पड़ा।

कुछ समय के लिए खोस्त के विद्रोहियों का नेता हबीबुल्ला कलाकानी काबुल का शासक रहा। उसने बादशाह अमानुल्लाह के बहुत से सुधारवादी कार्यों को रोक दिया। उसने धार्मिक शिक्षा को बढ़ावा देते हुए शिक्षा का कार्य उलेमाओं को सौंप दिया। देश में चल रहे पुस्तकालयों तथा संग्रहालयों को भी बंद कर दिया गया। कानून, न्यायपालिका आदि भी धार्मिक नेताओं के हवाले कर दिए गए [Clements & Adamec (2003)]। हबीबुल्ला कलाकानी का कार्यकाल नौ महीने ही चला, क्योंकि भारत में निर्वासित जीवन जी रहे नादिर शाह ने वजीरिस्तान के कबीलों और ब्रिटिश सेना के सहयोग से अक्तूबर 1929 में काबुल पर कब्जा कर लिया और हबीबुल्ला कलाकानी को उसके कुछ सहयोगियों के साथ फाँसी दे दी गई।

नादिर शाह ने सत्ता सँभालते ही विद्यालयों के सुधारवादी कार्यों को पुनर्गठित किया। उसके कार्यकाल में, 1932 में काबुल में औषधि विभाग की स्थापना हुई। उसका कार्यकाल अधिक लंबा नहीं रहा और 1932 में ही उसकी हत्या कर दी गई। नादिर शाह के बाद उसके पुत्र जाहिर शाह ने 19 वर्ष की उम्र में काबुल की गद्दी सँभाली और 1932 से 1973 तक उसका शासन रहा। इस दौर में बैंकिंग प्रणाली और कृषि उत्पाद के निर्यात की शुरुआत हुई। 1937 में काबुल विश्वविद्यालय में चिकित्सकों का पहला समूह प्रशिक्षित हुआ था (Samady, 2001)। द्वितीय विश्वयुद्ध में, गुटनिरपेक्ष रहते हुए अफगानिस्तान ने अमेरिका और रूस दोनों से ही अपने राजनयिक और व्यापारिक रिश्ते बनाए। 1949-1950 में, काबुल विश्वविद्यालय में छात्रों की यूनियन को मान्यता दी गई और प्रेस की आजादी का ऐलान किया गया। इसके परिणामस्वरूप कई नए अखबार शुरू हुए। जब छात्र यूनियन ने राजशाही के अत्याचार और उनके द्वारा धर्म का इस्तेमाल अपने अन्याय को ढँकने के लिए आलोचनात्मक रुख अख्तियार किया तो 1951 में छात्र यूनियन पर पाबंदी लगा दी गई। 1953 में जाहिर शाह के संबंधी दाऊद प्रधानमंत्री बने। दाऊद ने महिलाओं के लिए परदा करने की अनिवार्यता को खत्म कर दिया और इसका सकारात्मक परिणाम यह हुआ कि काबुल विश्वविद्यालय में लड़कियों का नामांकन बढ़ा और इसी दौर में कुछ महिलाओं ने नौकरी की शुरुआत भी की। आँकड़ों के हिसाब से 1950 तक विद्यालयों की संख्या 300 तक ही बनी रही। 1960 में विद्यालयों की यह संख्या 1,100 और 1970 में 3,000 बताई गई है।

सन् 1973 में अफगानिस्तान के शासक जाहिर शाह यूरोप की यात्रा पर गए और इसी बीच मुहम्मद दाऊद ने राजशाही के अंत की घोषणा करते हुए स्वयं को देश का राष्ट्रपति घोषित कर दिया। नया संविधान बना और एक राजनीतिक दल, नेशनल रेवोलुशनरी पार्टी (1975 में दाऊद द्वारा गठित) को छोड़कर सभी दलों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। अप्रैल 1978 में प्यूपिल डेमोक्रेटिक पार्टी ऑफ अफगानिस्तान और सोवियत संघ की सेना द्वारा समर्थित सैन्य विद्रोह हुआ और मुहम्मद दाऊद और उनके परिवार की हत्या कर दी गई।

वर्ष	स्कूल	नामांकन		कुल छात्र	शिक्षक
		बालक	बालिका		
1940	300	56,100	900	57,000	1,800
1950	300	87,500	4,000	91,500	3,000
1960	1,100	1,55,700	20,000	1,75,700	5,100
1970	3,000	4,64,500	76,100	5,40,600	13,100
1980	3,800	9,17,400	1,98,600	11,16,000	35,400

स्रोत-सूची : कार्लसन पी और मंसूरी ए (2007)

अफगानिस्तान में किताबों का प्रकाशन 1947 से शुरू हुआ और एक अति केंद्रीकृत व्यवस्था के तहत राज्यस्तरीय शिक्षा निदेशालयों की स्थापना की गई। 1960 के दशक में अफगानिस्तान में एक शिक्षक का वेतन, समान वर्षों की सेवा वाले दूसरे व्यक्तियों से अधिक था। वार्षिक शिक्षक दिवस मनाया जाता था और लंबी अवधि की सेवा के लिए विशिष्ट पदक दिया जाता था (Samady, 2001)। काबुल के बाद, 1964 में नांगरहार में अफगानिस्तान का दूसरा विश्वविद्यालय बनाया गया। 1967 में काबुल में ही पॉलीटेक्निक और औद्योगिक प्रबंधन संस्थान भी स्थापित किए गए।

सत्तर के दशक में अफगानिस्तान में 50 प्रतिशत शिक्षक माध्यमिक या उससे उच्च डिग्री धारित थे। 1976 की सप्तवर्षीय योजना में आठ वर्ष की बुनियादी और अनिवार्य शिक्षा को शामिल किया गया। साथ ही हाई स्कूल स्तर पर, अलग-अलग विषयों के विकल्प और व्यावसायिक शिक्षा भी आरंभ हुई। 1980 में अफगानिस्तान में तीन और नए विश्वविद्यालय (हेरात, बल्ख और कंधार) स्थापित किए गए।

सन् 1979-80 में काबुल में कम्युनिस्ट सरकार सत्ता में आ चुकी थी। उन्होंने शिक्षा के विस्तार को कम्युनिस्ट विचारधारा के फैलाव का साधन मानते हुए बालिका शिक्षा पर बहुत जोर दिया (Samady, 2001)। काबुल में उस समय, शिक्षकों में 75 प्रतिशत से अधिक महिलाएँ थीं। सोवियत संघ की शिक्षा व्यवस्था को एक मॉडल के तौर पर प्रस्तुत किया गया और विज्ञान व गणित को विशेष प्रोत्साहन दिया गया। हाई स्कूल स्तर पर, इतिहास, भूगोल और राजनीति विज्ञान की नई किताबें लागू की गईं। कम्युनिस्ट पार्टी की सरकार और रूसी सेना के विरोध में, मुजाहिद्दीन के सात संगठनों ने जिहाद का नारा दिया और सशस्त्र युद्ध का ऐलान कर दिया।

मुजाहिद्दीन ने अपने प्रभाव के इलाके और पाकिस्तान में चल रहे अफगान शरणार्थी शिविरों के लिए, अमेरिका की वित्तीय मदद से, नेब्रास्का ओम्हा विश्वविद्यालय (University of Nebraska Omaha) द्वारा निर्मित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें चलवाईं। ये पुस्तकें 1984 के बाद से चलती रहीं। जे. स्पिंक के मुताबिक, इन पुस्तकों में एक उग्र विचारधारा और बदले की भावना का समर्थन और अफगानिस्तान में मौजूद रूसी सेना के प्रति घृणा का भाव प्रमुख था। मुजाहिद्दीन किताबों के जरिये जहाँ बदले की भावना को जगाए रखना चाहते थे, वहीं इस्लाम की सुन्नी और देवबंदी विचारधारा को पहचान का पर्याय बना रहे थे। अन्य धार्मिक समूहों के लिए इन किताबों में कोई जगह नहीं थी और गैर-सुन्नी, अधार्मिक और कम्युनिस्ट के प्रति नफरत का भाव था।

ग्रामीण इलाकों में मुजाहिद्दीन का प्रभाव था और वहाँ अनेक विद्यालय शरणार्थी शिविरों में बदल गए थे। बड़ी संख्या में अफगान लोग, पाकिस्तान-ईरान के शरणार्थी शिविरों में रहने चले गए थे। सेना और मुजाहिद्दीन के बीच संघर्ष तेज हो रहा था और दोनों समूह एक-दूसरे पर हमले कर रहे थे। असुरक्षा और अनिश्चितता के कारण लड़कियों की शिक्षा को जबरदस्त नुकसान हुआ। सेना और मुजाहिद्दीन के बीच लड़ाई में 1983 तक 50 प्रतिशत स्कूल क्षतिग्रस्त हो गए थे (Elmi, 1986)। मुजाहिद्दीन, गुरिल्ला शैली में युद्ध लड़ रहे थे। इसके बाद अंतरराष्ट्रीय स्तर पर शीत युद्ध के बदलते परिदृश्य और राजनीतिक समझौते के चलते, 1989 में सोवियत सेना अफगानिस्तान से वापस चली गई और कुछ समय के बाद कम्युनिस्ट पार्टी की सरकार की जगह मुजाहिद्दीन के कुछ गुटों को शामिल करके मिली-जुली सरकार ने काबुल में सत्ता सँभाली। 1992 में प्राथमिक शिक्षा के लिए एक नया पाठ्यक्रम लाया गया और 30 प्रतिशत समय कुरान और इस्लामिक अध्ययन के लिए आवंटित किया गया। 1996 से 2001 के बीच, अफगानिस्तान की सत्ता पर तालिबानी काबिज रहे और इस दौर में लड़कियों की शिक्षा और महिलाओं के नौकरी करने पर पूरी तरह से पाबंदी लगा दी गई। महिलाओं के लिए परदे की अनिवार्यता थी। सरकारी पाबंदी के बावजूद, ग्रामीण इलाकों में, बड़ी संख्या में लड़कियाँ घरों के भीतर पढ़ रही थीं। इस दौरान, 10-15 प्रतिशत छात्र मकतब में नामांकित थे (Rugh, 1998)। तालिबान के शासन काल में अफगानिस्तान का दुनिया के गिने-चुने देशों से ही राजनयिक संबंध था, जिसमें सऊदी अरब भी एक था। इस दौर में किताबों में बदलाव शुरू हुए और जीवित चीजों की तस्वीरों को हटाया गया और किताबों में धार्मिक तत्वों का समावेश किया गया। सऊदी अरब के सहयोग से अरबी भाषा की किताबें भी विद्यालयों में शुरू की गईं, लेकिन पश्तो और ताजिक/दरी स्थानीय भाषा होने के कारण अरबी की यह योजना अफगानिस्तान में अधिक प्रभावशाली नहीं रही। (J. Spink, 2005, Journal of Peace Education, volume 2, No. 2 Sept 2005, pp 195-207)

सन् 2001 में अमेरिकी सेना की मदद से, तालिबान का शासन समाप्त हुआ और एक कार्यवाहक सरकार का गठन किया गया। तालिबान के सत्ता से हटने के बाद, दुनिया की अनेक गैर-सरकारी संस्थाएँ अफगानिस्तान में शिक्षा के लिए कार्य कर रही थीं। यूनीसेफ सहित दूसरी संस्थाओं का जोर, स्कूलों में नामांकन और ग्रामीण इलाकों में ब्लैकबोर्ड, चाक, स्टेशनरी जैसी बुनियादी चीजें पहुँचाने पर था। 2001-2002 में कक्षा एक से 12वीं तक के कुल 8,379 विद्यालय थे, जिनमें 1,399 विद्यालय बालिकाओं के लिए थे। इस दौरान लगभग 52 लाख छात्र नामांकित हुए, लेकिन संसाधनों के अभाव और राजनीतिक कारणों से मुजाहिद्दीन और तालिबानी दौर की किताबें ही 2001 और 2002 में पुनः प्रकाशित हुईं।

सन् 2001 के बाद देश के अलग-अलग इलाकों में, सरकार और तालिबान के बीच सशस्त्र युद्ध या मुठभेड़ चलती रहती है। देश में नामांकन और विद्यालयों की संख्या बढ़ी है, लेकिन हिंसा की घटनाओं के शिकार शिक्षक और छात्रों की संख्या भी बढ़ रही है। शिक्षकों और छात्रों को प्रतिदिन नई चुनौतियों से गुजरना पड़ रहा है। विद्यालयों को बंद करने, अध्यापकों को नौकरी, शहर, गाँव छोड़ देने, विद्यालयों की इमारतों पर हमला करने जैसी घटनाएँ आम होती जा रही हैं। 2017 के मुकाबले 2018 में अफगानिस्तान में विद्यालयों पर हमले की घटनाओं में तीन गुना इजाफा हुआ है। यूनीसेफ की एक रिपोर्ट के मुताबिक, 2017 में जहाँ विद्यालयों पर 68 हमले दर्ज किए गए थे, वहीं 2018 में, इनकी संख्या बढ़कर 192 हो गई।

कोरोना के संदर्भ में परंपरागत भारतीय जीवन

कोरोना आज विश्व की सर्वाधिक भयंकर महामारी बन गया है। वर्ष 2019 में इस बीमारी के लक्षण दिखने प्रारंभ हुए और 2021 में भी वैश्विक स्तर पर इस महामारी ने बहुत से व्यक्तियों की जान ले ली है। कदाचित ही ऐसा कोई देश होगा, जहाँ इस महामारी ने अपना भयंकर रूप न दिखलाया हो। कोरोना के कारण अजीब-सा माहौल देखने को मिल रहा है, न तो इत्मीनान से परिवार के सदस्य अपने स्वजनों का इलाज करवा पा रहे हैं (कोरोना के लक्षण दिखते ही घर पर आइसोलेट किया जाता है या अस्पतालों में उन्हें अकेला छोड़ देते हैं, न मिलना, न बातचीत करना, न सेवा-शुश्रूषा करना) और न ही मृत्यु होने पर धार्मिक अथवा पारंपरिक रीति-रिवाज के साथ मृत शरीर का अंतिम संस्कार कर पा रहे हैं।

मनुष्य का व्यवहार बिलकुल पशुवत हो गया है। कई ऐसे उदाहरण हैं, जब पुत्र अपने माता-पिता के शव को लेने ही नहीं आ रहे हैं। शवयात्रा में जाने के लिए लोग तैयार नहीं हैं। प्रशासन की ओर से भी कड़ाई है। विवाह-उत्सवों का उत्साह भी समाप्त हो गया। बाजार वीरान, सड़कें सूनीं, घरों के अंदर सभी बंद, पूरा सन्नाटा, फिर भी कोरोना से मृत्यु?

इस भयंकर बीमारी का कोई स्थापित इलाज नहीं, पर भारत सहित विश्व के हजारों वैज्ञानिकों ने कोरोना से मुक्ति के लिए प्रयोगशालाओं में प्रयोग करते हुए कई वैक्सीनों का निर्माण किया है, आज वे बाजार में हैं। इसके साथ ही पूरे विश्व में कोरोना का सामना करने के लिए एक शब्द का प्रयोग हुआ, वह है—'इम्युनिटी'। वर्तमान में यह सबसे प्रचलित शब्द है, अर्थात रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास। इम्युनिटी बढ़ाने से कोरोना से लड़ने की क्षमता विकसित होती है। इस सूत्र के मिलते ही (वैसे इम्युनिटी प्रत्येक रोग से ठीक होने के लिए आवश्यक है) एलोपैथी, आयुर्वेद, यूनानी चिकित्सा पद्धति, होम्योपैथी आदि सभी चिकित्सा पद्धतियों में इम्युनिटी को बढ़ाने की अनेक दवाइयाँ बाजार में आ गईं। इससे भी अधिक वाट्सऍप, मैसेज, इंस्टाग्राम, फेसबुक आदि पर इम्युनिटी को बढ़ाने के सैकड़ों तरीके, नुस्खे, विधियाँ प्रसारित होने लगीं। योगा, प्राणायाम सहित कई व्यायाम करने के विकल्प सामने आने लगे। इनके साथ-ही-साथ कुछ सावधानियों को व्यवहार में लाने की सलाह भी राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर दी जाती रही हैं; जैसे—मास्क लगाना, दूरी बनाए रखना, हाथ धोते रहना, स्पर्श न करना आदि। वस्तुतः ये सब जीवन जीने के तरीकों में सम्मिलित हैं। व्यवहार में इनके पालन से संक्रमण को रोका जा सकता है।

भारतीय जीवन पद्धति में अति प्रारंभ काल से ही व्यवहार में कुछ सावधानियों की ओर संकेत किया गया है तथा दिनोंदिन जीवन में

उनका उपयोग भी किया जाता रहा है। ये सावधानियाँ ही हमारी परंपराएँ हैं। निश्चित रूप से व्यवहार के उपयोग कोरोना के संक्रमण को रोकने में सहायक होंगे। प्रत्येक हिंदू परंपरा के पीछे कोई-न-कोई वैज्ञानिक रहस्य छिपा हुआ है। भारत की कुछ परंपराओं में से एक नमस्कार करने की परंपरा है। हमारे यहाँ एक व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति को अभिवादनस्वरूप हाथ जोड़कर नमस्कार करता है, जिससे किसी तरह का शारीरिक संपर्क न होने से कीटाणुओं के संक्रमण का खतरा भी नहीं होता। कोरोना वायरस के संक्रमण ने पूरी दुनिया में लोगों का आपस में मिलने का तरीका बदला है। अब ज्यादातर लोग हाथ मिलाने के स्थान पर नमस्कार करने की आदत डालते जा रहे हैं। यह हमारी भारतीय परंपरा है।

दुनिया के कई और देशों में भी अपनी परंपरा से हटकर अभिवादन करने का तरीका बदला है। उदाहरण के तौर पर—चीन ने अब 'हैलो' करने का नया तरीका अपनाया है और जापान में कोई व्यक्ति जब दूसरे व्यक्ति से

शक्ति भारद्वाज

जन्म : 08 सितंबर, 1969

शिक्षा : एम.एस-सी., पी-एच.डी.।

प्रकाशन : चार पुस्तकें प्रकाशित, नौ शोध प्रतिवेदन लेखन।

पुरस्कार : डॉ. शंकर दयाल शर्मा पुरस्कार हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल।

संपर्क : मोबाइल— 8989668132

मिलता है तो सिर झुकाकर अभिवादन करता है। भारतीय परंपराओं में साफ-सफाई पर ज्यादातर ध्यान दिया जाता है। ऐसा करके कोरोना वायरस से ही नहीं, और भी कई बीमारियों से बचा जा सकता है।

हमें अपनी दिनचर्या में स्वच्छता का पूरा ध्यान रखना चाहिए। जूते-चप्पल घर के बाहर ही उतारकर घर में प्रवेश करना हमारी भारतीय परंपरा है। हाथ-पैर धोकर घर के अंदर जाना हमारी काफी पुरानी भारतीय परंपराओं में से एक है। किसी भी कार्य को करने से पहले हाथों को पानी से धोना हमारी परंपरा रही है।

> **'डेविड फाउले' के अनुसार, तनाव के इस युग में योग, आयुर्वेद, मंत्र एवं ध्यान से रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। आयुर्वेद ने तांबे के पात्र में तुलसी के पत्तों के साथ रातभर रखा पानी नित्य प्रातः पीने की अनुशंसा की है। यह रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने का एक अच्छा उपाय है।**

कोरोना वायरस से बचने के लिए आज पूरी दुनिया के लोग अपने आपको घरों में बंद कर रहे हैं, लेकिन भारतीय संस्कृति में यह परंपरा आदिकाल से रही है। हमारे यहाँ बच्चे के जन्म के बाद माँ-बेटे को अलग कमरे में रखते हैं, महीनेभर तक होम क्वारेंटाइन किया जाता है। ऐसे समय को भारतीय परंपरा में 'सूतक' कहा जाता है और फिर महीनेभर बाद हवन करके घर को धोकर शुद्ध करने के लिए हवन सामग्री का, कपूर का एवं घी आदि चीजों का उपयोग किया जाता है, जिससे घर के जीवाणु मर सकें। शंख बजाया जाता है, घंटी बजाई जाती है, ताकि ध्वनि के आवर्तन से बहुत से सूक्ष्म जीव स्वयं नष्ट हो जाएँ।

इसी प्रकार जब किसी व्यक्ति की मृत्यु के बाद जलाकर श्मशान से जब लोग घर लौटते हैं, तब वे नीम के पानी एवं पत्ती से हाथ धोकर व नहाकर घर में प्रवेश करते हैं, ताकि सारे जीवाणु नीम के पानी से मर जाएँ। यह हमारी भारतीय परंपरा है।

हमारी भारतीय परंपराओं में सूर्योदय से पहले उठकर सूर्य की किरणों से ऊर्जा ग्रहण करना एवं शाम को दीपक व धूप-बत्ती जलाकर आरती करना है। इससे वातावरण में शुद्धता आती है और हानिकारक कीड़े-मकोड़े भी नष्ट हो जाते हैं।

भारतीय परंपराओं में शाकाहार को बहुत अहमियत दी गई है, क्योंकि शाकाहारी भोजन करने वालों में बीमारियाँ कम होती हैं, अपेक्षाकृत मांसाहार खाने वाले व्यक्तियों के। मांसाहार नकारात्मक आहार है। इससे कई प्रकार की कैंसर, हृदय रोग, मधुमेह, गुर्दे के रोग, मोटापा, दमा आदि बीमारियाँ होती हैं। इसी कारण व्यक्तियों को मांसाहार से दूरी बनाए रखनी चाहिए।

भारतीय रसोई में जो मसाले उपयोग होते हैं, उनमें हल्दी सबसे महत्वपूर्ण है। इसमें ऑक्सीजनवर्धक, जलनरोधक गुण होते हैं। यह श्वसन एवं पाचन समस्याओं और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में भी उपयोगी है। घरों में खाना बनाने के बाद भगवान का भोग तुलसी का पत्ता रखकर लगाना भारतीय परंपरा है। तुलसी खाने से हमारा प्रतिरक्षी तंत्र मजबूत होता है। तुलसी एक एंटीबायोटिक औषधि होती है एवं मनुष्य को सबसे अधिक प्राणवायु ऑक्सीजन देती है। हमारे यहाँ पीपल के पेड़ को देवता मानकर उसकी पूजा की जाती है। यह पेड़ भी अधिक मात्रा में ऑक्सीजन देता है। पहले के लोग सुबह नीम की दातुन करते हैं, जिससे दाँत व गले के जीवाणु मर जाते हैं और दाँत व मसूड़े मजबूत भी बने रहते हैं।

'डेविड फाउले' के अनुसार, तनाव के इस युग में योग, आयुर्वेद, मंत्र एवं ध्यान से रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। आयुर्वेद ने तांबे के पात्र में तुलसी के पत्तों के साथ रातभर रखा पानी नित्य प्रातः पीने की अनुशंसा की है। यह रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने का एक अच्छा उपाय है।

कोरोना वायरस के कारण सदियों से चली आ रही पूजा-आराधना की परंपरा, विधि-विधान आदि में भी बदलाव आया है, जैसे—मंदिरों में अब भगवान की मूर्ति को छूने की मनाही, बाहर से ही दर्शन करना आदि। हाथों से घंटी न बजाना, अब कई मंदिरों में सेंसर की सहायता से घंटी बजाई जाती है। महामारी के चलते मंदिरों को बंद रखा गया। कोरोना वायरस के बढ़ते प्रकोप को देखते हुए कुछ परंपराओं में बदलाव हुआ है। उदाहरण के तौर पर, जनेऊ संस्कार पर भिक्षा माँगना, शादी में मामा द्वारा भात देना, नामकरण संस्कार, शादी में महिला संगीत और भी बहुत से कार्यक्रम रद्द करने पड़ रहे हैं, जिनमें जन-समूह एकत्रित होकर कार्यक्रम करता था। इस पर रोक लगी है, अब गिनती के ही सगे-संबंधी समारोह में होते हैं।

कोरोना वैश्विक महामारी के कारण लोग फिर से अपनी पुरानी परंपराओं की ओर लौट रहे हैं। हमारे बड़े-बुजुर्ग मिट्टी के बरतनों में ही पानी पीना पसंद करते थे, लेकिन आज की नई पीढ़ी फ्रिज का ठंडा पानी पीना पसंद करती है (फ्रिज का ठंडा पानी सामान्य से बहुत कम तापमान पर होता है। अतः सेहत को नुकसान पहुँचाता है।) लेकिन कोरोना वायरस के कारण लोग फ्रिज का पानी पीने से परहेज करने लगे हैं। मटके के पानी का तापमान सामान्य होता है और उसका पानी गुणकारी भी होता है। अतः लोग फिर से अपनी पुरानी परंपरा की ओर लौट रहे हैं। स्वास्थ्य विभाग ने भी कहा है कि सामान्य या गरम पानी का सेवन करें।

मृत्यु के पश्चात कई परिवारों में शांति बैठक हुआ करती थी, जिसमें पूरा समाज, परिचित लोग एकत्रित हुआ करते थे, लेकिन कोरोना काल में इस परंपरा को भी तोड़ दिया है। इस समय ऑनलाइन, फोन, फेसबुक, वाट्सएॅप के जरिये लोग अपना सांत्वना संदेश भेज रहे हैं। समय के साथ सब-कुछ बदलता रहता है, लेकिन उनमें से कुछ बदलाव लाभदायक और कुछ हानिकारक होते हैं। बड़े-बुजुर्ग कहा करते हैं कि खाना खाने या बाहर से आने पर अपने हाथों को अच्छे से धोकर साफ करें। कोरोना वायरस से बचाव की सलाह देने वाले विशेषज्ञ भी बार-बार कह रहे हैं कि साबुन से 20 सेकंड तक हाथ धोएँ, जिससे कोरोना वायरस का खतरा कम हो जाएगा।

शुभ, संकल्प के साथ हम सभी बातों को जोड़ते हैं जो हमारे शुभ को संकल्प को प्रगाढ़ करती हैं; जैसे—ताली बजाना, घंटियाँ बजाना, शंख बजाना, ये सब क्रियाएँ हमारे अंदर सकारात्मक ऊर्जा उत्पन्न करती हैं।

भारतीय परंपराओं को अपनाने पर विदेशी वैज्ञानिक भी जोर दे रहे हैं; जैसे—हाथ जोड़कर नमस्ते करना, जूते-चप्पलों को घर से बाहर उतारकर ही अंदर जाना आदि।

आज हमें गर्व होना चाहिए कि पूरा विश्व हमारी परंपराओं एवं संस्कृति को सम्मान से देख रहा है। यही जीवन-शैली सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ है। ऐसा नहीं है कि इन परंपराओं का पालन करने से कोरोना महामारी से हम निजात पा सकते हैं, पर हाँ, इतना अवश्य है कि हम महामारी की तीव्रता को कुछ कम सकते हैं।

माता भूमिः

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्या।

—अथर्व 12/1/12

माता भूमि नए युग की देवता है। सुंदर, संकल्प, सशक्त कर्म और त्याग-भावना जिसके लिए समर्पित हो, वही देवता है। देवता के बिना मनुष्य रह नहीं सकता। युग-युग में मानस-लोक को भरने के लिए देवता की आवश्यकता होती है। देवता भी सदा एक से तेज से नहीं चमकते, वे उगते और अस्त हो जाते हैं। इंद्र-अग्नि के कल्प और शिव-विष्णु के युग तत्कालीन मानव की सर्वोत्तम भाव-भक्ति और सृजन-शक्ति का प्रसाद पाकर बीत गए। अर्वाचीन युग मातृभूमि को महती देवता मानकर अपना प्राण-भाव अर्पित करता है। एक देश में नहीं, सभी देशों की यही प्रवृत्ति है। जहाँ मातृभूमि की प्रतिष्ठा अभी उच्चतम आसंदी पर नहीं हुई है, वहाँ की जनता वैसा करने के लिए व्याकुल है। यही नूतन युग का समान संदेश है। लोक-सिंधु के मंथन से मातृभूमि रूपी नए देवता का जन्म हो रहा है।

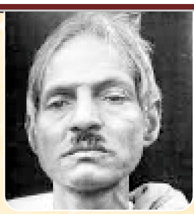

वासुदेवशरण अग्रवाल

वासुदेवशरण अग्रवाल (1904-1967) भारत के प्रसिद्ध विद्वान एवं लेखक थे। वे इतिहास, संस्कृति, कला, साहित्य के विशेषज्ञ थे। उन्होंने मथुरा संग्रहालय (उत्तर प्रदेश) के संग्रहाध्यक्ष के रूप में अपनी सेवा दी। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष' है। साहित्य की सेवा के लिए उन्हें साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

जिस समय युग के देवता का जन्म होता है, राष्ट्रीय किलकारी हर्षित स्वरों से उसका गुणगान करती है। उसी से देवता का रूप संपादित होता है। जातीय मानस का मूर्तिमान रूप ही देवता बनता है। मातृभूमि की आत्मा और जातीय मानस की अभिन्नता समझनी चाहिए। किसी देश को समझने के लिए उसके जातीय मानस का परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। जातीय मानस के दीप्तिपटों का उद्घाटन राष्ट्र को समझने की कुंजी है।

मातृभूमि का भौतिक विस्तार हमारे सामने फैला है, परंतु उसका वास्तविक रूप तो उसकी सांस्कृतिक मूर्ति है, जिसका निर्माण देशवासियों ने शताब्दियों और सहस्राब्दियों की हलचल के बाद किया है। भारत का भौमिक क्षेत्र कम्बोज (मध्य एशिया में पामीर) से सूरमस (सूरमा नदी, असम) तथा गंगा की उपरली धारा जाह्नवी के उद्गम से लेकर कन्याकुमारी समुद्रांत तक विस्तृत था। समय-समय पर इस क्षेत्र में परिवर्तन होते रहे, परंतु मातृभूमि का स्वरूप एकरस बना रहा, उसकी सांस्कृतिक धारा अखंड रूप से प्रवाहित रही। ध्यान से मातृभूमि का आविर्भाव होता है। अपने मन के चिंतन से जिन विचारों को हम जन्म देते हैं, उन्हीं का समुचित रूप मातृभूमि का हृदय कहलाता है। एक देश की मिट्टी और दूसरे देश की मिट्टी में रासायनिक दृष्टि से भेद ढूँढ़ने का कुछ अर्थ नहीं है। अथर्ववेद के पृथिवीसूक्त में एक सुंदर कल्पना मिलती है जिसके अनुसार यह पृथ्वी पूर्व युग में समुद्र तल के नीचे छिपी हुई थी, ध्यान के धनी पुरुषों ने अपने चिंतन की शक्ति से इसे ढूँढ़ निकाला। हममें से प्रत्येक के लिए आवश्यक है कि मातृभूमि की प्राप्ति मन के द्वारा करें, अपने हृदय को उसके साथ मिलावें। भूमि माता है, मैं उसका पुत्र हूँ—

'माता भूमिः पुत्र अहं पृथिव्या।'

यह संबंध केवल भौतिक नहीं है, इसका पूर्ण रस तो मन के अनुभव में है।

हमारा मन मातृभूमि के मन का एक अंश है। पृथ्वी या मातृभूमि का हृदय पृथ्वीसूक्त के अनुसार अमृत से ढँका हुआ है—

'हृदयेनावृतममृत पृथिव्याः।'

इसी अमृत मन से हमें अपना भागधेय प्राप्त करना है। अमृत मन राष्ट्र की संस्कृति का ही दूसरा नाम है। मन के चारों ओर भरा हुआ जो अमृत समुद्र है, उसी में सत्य, यज्ञ, त्याग, तप, अहिंसा सर्वभूतों का हित, न्याय, धर्म, ज्ञान आदि सुंदर दिव्य भावों के कमल तैर रहे हैं। उनकी गंध को हमारे पूर्व-पुरुषों ने सूँघा था और उसी को मातृभूमि के हृदय तक पहुँचने के लिए हमें प्राप्त करना है। मातृभूमि का भौतिक रूप हम सब के शरीरों में बसा हुआ है। हम कहीं भी हों, उस रूप से हम पहचाने जाते हैं, उसका परित्याग हम नहीं कर सकते। किंतु भौतिक रूप से अनंत-गुण-प्रभावशाली मातृभूमि के हृदय का अमृत है जो उन गुणों और विशेषताओं से मिल सकता है जिनकी उपासना राष्ट्रीय संस्कृति का प्रधान अंग रहा है। भीष्म-पर्व में जिस भारतवर्ष की कल्पना की गई है, वह भारत इंद्र, मनु, इक्ष्वाकु, ययाति, अम्बरीष, मान्धाता, शिबि, दिलीप आदि अनेक राजर्षियों को प्रिय था। ये राजर्षि जिस उदार मन से इस भूमि को देखते थे, उसका आधार सत्य और ज्ञान के अमर आदर्श थे जिनका इस पुण्य भूमि में पुरातन काल से आविर्भाव हुआ और जिनके लिए राष्ट्र के उच्चतम स्त्री-पुरुषों ने अपने जीवन में प्रयोग किए। आर्थिक लाभ व देश-विजय के कारण यह पृथ्वी राजर्षियों की प्रिय पात्र नहीं बनी। पूर्व-पुरुषों की वह उदार परंपरा जनक, याज्ञवल्क्य, कृष्ण, बुद्ध, शंकर, गांधी के द्वारा आगे बढ़ती रही है, उनके मनों को वही अमृत सींचता था जो मातृभूमि के हृदय में भरा हुआ है। आज भी हमारी राष्ट्रीय आस्था उन दिव्य सत्यों से तिल-मात्र विचलित नहीं हुई है। दिलीप के गो-चारण की तरह अपने शरीर के मांस-पिंड को डालकर राष्ट्रनायकों ने हिंस्र प्रवृत्तियों को रोका है। इस जीवन-सत्य की व्याख्या मातृभूमि अमृत हृदय में लिखी है। हिंसा के उन्मत्त तांडव में जो धीर बना रहा, मनुष्यों के हृदयों में लगी हुई प्रतिहिंसा की अग्नि का कृष्ण के दावानल-पान की तरह जिसने आचमन कर लिया, राष्ट्रीय मंथन से उत्पन्न हुए विष को शिव के सदृश जिसने पान कर लिया, वह राष्ट्रनायक मातृभूमि के अमृत हृदय की साक्षात व्याख्या हमारे सामने रख रहा था। वह सचमुच तथागत था। पूर्वकाल में जैसे मनीषी आए वैसा ही वह था, उसका मन तथा-भाव में अडिग रहा। स्वयं अविचल रहकर उस देव-कल्प मानव ने मातृभूमि के हृदय को हड़कंप और धक्कों से बचा लिया। यही मातृभूमि की ध्रुवस्थिति है। वेदिक शब्दों में इसी को पृथ्वी के हृदय का वृहण कहा गया है जो युग-युग में होने वाले प्रकंपन से मातृभूमि की रक्षा करता है। भारतीय इतिहास इस प्रकार की भूचाली घटनाओं का साक्षी रहा है, किंतु राष्ट्र का सांस्कृतिक हृदय इस प्रकार के उथल-पुथल के बीच पड़कर भी अपने स्वास्थ्य को बचा सका, यही इस देश का अमृत जीवन-प्रवाह है।

मातृभूमि के जिस स्वरूप की कल्पना हम ध्यान में करते हैं, उसमें तो सारा विश्व समाया हुआ है। हमारी भूमि विश्व का ही अंग है। अतएव मातृभूमि का मन विश्वात्मा के साथ मिला हुआ है। जिस राष्ट्रीयता के साथ विश्व-बंधुत्व का विरोध हो, वह हमें प्रिय नहीं। युग-युग में भारत की राष्ट्रात्मा विश्वात्मा के साथ समन्वय ढूँढ़ती रही है। इस राष्ट्र में जिस दिन प्रथम बार ज्ञान का नेत्र उघड़ा, उसी क्षण समन्वय के स्वर यहाँ के नीले आकाश में भर गए। सहिष्णुता भारत राष्ट्र की जन्मघुट्टी है। समवाय इस देश का गुरु-मंत्र है। राष्ट्र में मानव जीवन में चारों ओर विभिन्नता छाई हुई है। एक, एक से भिन्न है। नाना और बहुधा से पदे-पदे पाला पड़ता है। इस सत्य को पृथिवीसूक्त के ऋषि ने तुरंत पहचान लिया और कहा—

जनं बिभ्रती बहुध विवाचस
नाना धर्माण पृथिवी यथौकसम्।

यह पृथिवी जिस जन की धात्री है, उनकी भाषाएँ अनेक और उनके धर्म अनेक हैं। इस अनेकता में तो जीवन का वरदान छिपा हुआ है, यदि हम बुद्धिपूर्वक उसको समझ सकें। अतएव भारतीय मानव की बुद्धि ने राष्ट्र के नानात्य के भीतर छिपी हुई एकता, सहिष्णुता और समवाय को ढूँढ़कर अपना जीवन-मंत्र बनाया। भारतीय विचार-जगत् की सबसे उत्कृष्ट नींव यही समन्वय-बुद्धि है। इसका मूल आलस्य-जनित उपेक्षा नहीं है, किंतु वह जागरूक मन है जो चैतन्य के द्वारा जड़ में पिरोई हुई एकता को खोजता है। कितनी बार यहाँ के साहित्य में इस स्वर को दोहराया गया है।

ऋग्वेद का 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' मंत्र हमारे ज्ञान-भवन की ललाट-लिपि है। इस सशक्त जीवित मंत्र का फल है अनाधर्षण। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को, एक समाज दूसरे समाज को, एक देश दूसरे देश को धर्षण-बुद्धि से कभी न देखे और न व्यवहार करे। मातृभूमि का युगांतव्यापी इतिहास इस तथ्य का साक्षी है। शांति के पथ से सांस्कृतिक सूर्य का प्रकाश फैले, यही भारत को इष्ट रहा है। देशांतरों में भारत की धार्मिक विजय जो सांस्कृतिक विजय का ही दूसरा नाम था, शांति के कारण ही बलवती हुई और सर्वत्र स्थानीय

विचार और जीवन-पद्धति ने उमंग कर उसका स्वागत किया। फलतः स्थानीय संस्कृतियाँ समृद्ध हुईं, निर्मूल नहीं। लोभ-विजय की प्रेरणा से भारत के वणिक्पोत समुद्र पार नहीं गए और न असुर-विजय के लिए यहाँ से सैनिकों ने दूसरों की भूमि को पैरों तले रौंदा। 'समन्वय' भारतीय राष्ट्र की ध्वजा का बना-बनाया मंत्र है।

हमारी मातृभूमि के हृदय को पूर्व और नूतन का मेल प्रिय है। पूर्व का सत्कार करना और नूतन के लिए स्वागत का दीप सजाना हमारे जातीय मानस को भला लगता है। इस राष्ट्र के सर्वोच्च कवि की वाणी में यह सत्य प्रकट हो उठा।

पुराणमित्येव न साधु सर्व
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।

'पुराना सभी अच्छा नहीं, नया बुरा नहीं'— इस वाक्य में कितना भारी संतुलित सत्य भरा हुआ है। ज्ञान की वेदि में जो अग्नि प्रज्वलित होती रही है, नए और पुराने सभी ऋषियों या ज्ञानियों ने उसमें भाग लिया है और समय-समय पर राष्ट्र ने उसके प्रकाश को उदार मन से स्वीकार किया है।

अग्नि पुर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।

—*ऋग्वेद* 1/1/2

भूतकाल के साथ गाँठ बाँधकर बैठे रहने की प्रवृत्ति हमारे राष्ट्र की आत्मा के विरुद्ध है। भूतकाल अपने पुराण स्वरों से हमारे जीवन को आशीर्वाद के जल से प्रोक्षित करता है, जकड़कर मृत्यु के पाश में बाँधता नहीं। जीवन का रस तो प्रकृति की ओर से ही वर्तमान और भविष्य के हाथों में समर्पित है। उसका विरोध करके कौन जीवित रह सकता है?

'चरेवेति चरेवेति' का स्वर हमारे इतिहास के प्रांगण में गूँजता रहा है। कवि की वाणी ने ठीक कहा है—

पतन-अभ्युदय बंधुर पंथा युग-युग धावित यात्री।
हे चिर-सारथि, तब रथ-चक्रे मुखरित पथ दिन-रात्री॥

भारत राष्ट्र का लोक-सनादन-चक्र शताब्दियों के बिछे हुए पथ पर चलता ही रहा है, इसमें संदेह नहीं। उसके विचारशील पुरुषों की वाणी ने उस पथ को मुखरित रखा है। नूतन के प्रति अविरोध-भाव राष्ट्रीय हृदय के भीतर छिपा हुआ है। अनेक क्रांतिकारी सुधार, जिनके लिए अन्य राष्ट्रों ने संघर्ष और रक्तपान का मूल्य चुकाया, भारत के मनीषियों की दृढ़ वाणी से थोड़े ही समय में संपन्न हो सके हैं। नारी, कृषक, अस्पृश्य, शोषित, इनकी प्रतिष्ठा का आश्चर्यजनक मंगल एक शताब्दी के चौथाई चरण में ही कैसे हो गया, इसका उत्तर मातृभूमि के हृदय में लगे हुए पूर्व-नूतन के गठबंधन से मिलता है।

नवो नवो भवति जायमान।

यही जीवन का विधान है। राष्ट्र जन्म लेगा तो नया-नया रूप सामने आएगा ही। बढ़ते हुए पौधे में नए-नए पल्लव ही उसे शक्ति देते हैं, किंतु इस राष्ट्ररूपी अश्वत्थ की जड़ें ऊर्ध्व या अमृत के साथ जुड़ी हैं, भूतकाल से वे बच नहीं सकतीं, वहाँ से वे अपने लिए पुष्ट जीवन-रस ग्रहण करती ही हैं। यही रुचिर विधान कल्याणकारी है। इस देश में भी निरंतर परिवर्तन हुए हैं, विकास हुआ है, व्यवस्थाएँ बदली हैं, किंतु अतीत इतिहास का जो मथा हुआ अमृतघट है, उसके प्रति भारतीय राष्ट्र की पूजावृद्धि या उत्साह कभी कम नहीं हुआ। भारतीय मस्तिष्क में समन्वय की जो अपूर्व क्षमता रही है, वह पूर्व-नूतन के समन्वय को भी कलात्मक ढंग से साध लेगी, इसमें संदेह नहीं। इस समन्वय-बुद्धि के द्वारा ही प्रत्येक नई वस्तु को पचाकर और अपने साँचे में ढालकर इस भूमि के निवासी अपनाते रहे हैं। भारतीय आत्मा नूतन वादों से व्यथित नहीं होती। नई वस्तु इस संस्कृति के जबड़ों के बीच में पड़कर तदनुकूल बनती है और रासायनिक क्रम से उस पर अपना प्रभाव डालती है, महाप्रबल यंत्र की तरह धक्का देकर

यहाँ की पद्धति को उखाड़ती नहीं। मातृभूमि के हृदय में स्थिति और गति का जो अद्भुत समन्वय है, वही इसका हेतु है। भारतीय हंस सरोवर के मध्य में एक पैर से टिका रहकर ही दूसरा पैर नए कमल की पंखुड़ी के लिए उठाता है, किंतु इस देश की निगूढ़ आत्मा टिककर पड़ रहने की जड़ता को सहन नहीं करती, काल के साँचे की जकड़ उसे गति के लिए व्याकुल बना देती है। इसी भाव से किसी समय इस आर्य परिभाषा का जन्म हुआ था—'जो सोता है, वह कलियुग है, जो अंगड़ाई लेता है, वह द्वापर है, जो उठ खड़ा होता है, वह त्रेता है और जो चल पड़ता है, वह सतयुग है।' (ऐतरेय ब्राह्मण)

भारतीय आत्मा इस लोक और परलोक के समन्वय में रुचि रखती है। मातृभूमि की भौतिक समृद्धि और उसका अध्यात्म-पक्ष दोनों ही समुज्ज्वल होने चाहिए। पृथिवीसूक्त के ऋषि ने जातीय जीवन का विधान यही बताया है कि द्युलोक और पार्थिवलोक दोनों में एक-दूसरे के साथ मेल हो तभी श्री और लक्ष्मी का जोड़ा बनता है। गूढ़ तत्वों में भारतवर्ष को सदा से अपूर्व रुचि रहती है और गुहानिहित तत्व की खोज इस संस्कृति की मूल्यवान निधि है। किंतु स्थूल पार्थिव जीवन एवं प्रत्यक्ष लोक की आस्था भी इस देश को सदा इष्ट रही है। जीवन के लिए भुवन में हमारा अस्तित्व हो, जरा से पहले मृत्यु हमें न

धर दबावे, मृत्यु के लिए मैं नहीं बना हूँ, ये भाव जीवन के प्रति गहरी रुचि प्रदर्शित करते हैं। जीवन को विकसित करने, सँवारने और कर्म के द्वारा नया निर्माण करने की साक्षी भारतीय इतिहास में पाई जाती है। साहित्य, कला, दर्शन, राजनीति, संस्कृति, बृहत्तर चतुर्दिश जीवन की चार खूँटों को लाँघकर देशांतरों में फैल गया—सभी क्षेत्रों में भारतीय मानव ने पुष्कल रचनात्मक कार्य किया है। उसकी यशोगाथा शोध के द्वारा पिछले सौ वर्षों में पर्याप्त प्रकट हुई है।

> **“धर्म वह शक्ति है जो प्रजाओं को और समाज को धारण करती है। धर्म मनुष्य को जीवन से परे हटाकर वन का मार्ग बताने के लिए नहीं बना और न पीलिया रोग की तरह जीवन को निस्तेज बनाने के लिए ही धर्म का प्रयोजन है। मनुष्य के इहलौकिक जीवन में विजय देने वाले और साथ ही अध्यात्म-शांति से परिचित कराने वाले व्यवस्थित जीवनक्रम का नाम धर्म है। यह धर्म प्रकृति के उच्च विधान के साथ मिला रहता है। अथर्ववेद में जो स्पष्ट कहा है कि यह पृथ्वी धर्म के बल पर टिकी हुई है।”**

भारत का अध्यात्म-प्रधान दृष्टिकोण उसका चिर-साथी रहा है। आज भी जातीय आत्मा के प्रति निकट है। भौतिक जीवन के घावों को भरने की विचित्र क्षमता का कारण यही अध्यात्म-भाव है। जड़ का आतक कभी चेतन को परास्त नहीं कर सकता, यही अध्यात्म का प्रत्यक्ष फल था। भारत का मूल अध्यात्म वेदांत पर टिका है। वेदांत यहाँ की संस्कृति का मथा हुआ मक्खन है, वह जीवन का पुष्प और फल है। भारतीय हृदय को संकट के समय परखा जाए तो हम उसे वेदांत के कवच से अपनी रक्षा करता हुआ पाएँगे। यहाँ का जन भौतिक दृष्टि से सब-कुछ खो देने पर भी अपने प्राणों को ऐसे लोक में समेट लेता है जहाँ वह समझता है कि उसे तृप्ति रस मिलता है। इतिहास के उत्थान-पतन की लहरिया गति का अनुशीलन राष्ट्रीय चरित्र की इस विशेषता को स्पष्ट बताता है। बाहरी आक्रमण के समय जातीय जीवन का एक पक्ष रस-हीन होकर मुरझा गया, किंतु एक ऐसा पक्ष भी सदा बना रहा जिसने हार नहीं मानी और जहाँ अमृत रस का झरना जातीय प्राणों को सींचता ही रहा। इसी बीज से कालांतर में नए जीवन के अंकुर फूटे। भारतीय इतिहास में अध्यात्म जगत का राजनीतिक जगत से कम महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। धर्म के भीतर से जीवन ने अपना मार्ग और नई-नई व्याख्या प्राप्त की। आज भी यह विशेषता बनी हुई है। संत, महात्मा, ऋषि-मुनि आचार्य और योगी, धर्म या अध्यात्म में नया रस ढाल कर जीवन की प्रेरक शक्ति को तीव्र बनाते रहे हैं। मातृभूमि के हृदय का यह स्वरूप स्पष्टता से हम समझ लें तो जन-मानस में छिपी हुई शक्ति के अतुल्य भंडार को हम निर्माण के कार्य में लगा सकते हैं।

यों तो भारत में अनेक पंथ, मतांतर और संप्रदाय हैं, किंतु मातृभूमि के सच्चे हृदय में संप्रदायवाद के लिए कोई रुचि या आग्रह नहीं है। भारतीय आत्मा धर्म शुद्ध सनातन सार्वभौम व्याख्या की ओर तुरंत झुकती है। जब भी कोई आचार्य इस प्रकार के महान धारणात्मक धर्म को अपने ज्ञान और आचार की शक्ति से जनता से रखता है, जनता उसे निराश नहीं करती। वस्तुतः युग-युग में भारतीय जन-कल्याण के साधन की यही बड़ी कुंजी रही है। कोई भी धर्म अपने में अच्छा या बुरा नहीं है। इस तात्विक दृष्टि को समझना भारतवासी के लिए अपेक्षाकृत सरल है। धर्म की सार्थकता उसके विश्वहित-साधन में है। संसारव्यापी जो अखंड नियम या जो सर्वश्रेष्ठ अध्यात्म-चैतन्य है, प्रत्येक धर्म उसी का रूप है और उसकी जितनी स्पष्ट व्याख्या वह प्रस्तुत कर सकता है, उतना ही वह ग्राह्य है। इस प्रकार के धारणात्मक नियमों को ज्ञान के उपकाल में ही भारतीय मनीषियों ने 'ऋत' के नाम से अभिहित किया था। यही ऋत कालांतर की परिभाषा में 'धर्म' कहलाया। वेदव्यास ने धर्म की जो व्याख्या की है, वह ऋत की ही व्याख्या है :

'नमो धर्माय महते धर्मो धारयति प्रजाः।
यत्स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इत्युदाहृतः॥'

संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम्।

—*अथर्व* 12/1/63

कवि वर्डस्वर्थ अपने नभचारी स्काइलार्क की ऐसी ही स्थिति की कल्पना करता है—

'True to the kindred points of heaven and home.'

वयं स्याम भुवनेषु जीवसे।
भा पूर्व जरसो मृथाः।
न मृत्यवे अवतस्थे कदाचन।

धर्म वह शक्ति है जो प्रजाओं को और समाज को धारण करती है। धर्म मनुष्य को जीवन से परे हटाकर वन का मार्ग बताने के लिए नहीं बना और न पीलिया रोग की तरह जीवन को निस्तेज बनाने के लिए ही धर्म का प्रयोजन है। मनुष्य के इहलौकिक जीवन में विजय देने वाले और साथ ही अध्यात्म-शांति से परिचित कराने वाले व्यवस्थित जीवनक्रम का नाम धर्म है। यह धर्म प्रकृति के उच्च विधान के साथ मिला रहता है। अथर्ववेद में स्पष्ट कहा है कि यह पृथ्वी धर्म के बल पर टिकी हुई है। (धर्मणा धृता) वह कोई संप्रदायवाद की पूजा नहीं है। वस्तुतः मातृभूमि की प्रशंसा में इससे श्रेष्ठ और कुछ कहा ही नहीं जा सकता कि उसकी टेक सैनिक बल पर नहीं, बल्कि नीति के अखंड नियमों पर है। धर्म का आसन भारतीय दृष्टि में राजा और प्रजा सबसे ऊपर है। न तो क्षत्र-सत्ता और न ब्रह्म-सत्ता धर्म अपहरण कर सकती है। सब-कुछ धर्म के वश में है अर्थात धर्म-सत्य-चैतन्य का विधान सकल मानवी विधानों का नियंता है। घट-घट में उसका निवास है। राष्ट्र का दंड जहाँ नहीं पहुँच पाता, वहाँ भी धर्म की नीतिमयी प्रेरणा मनुष्य का मार्गदर्शन करती है। यह अवश्य है कि भारतीय इतिहास से निरंकुश राजसत्ता ने प्रजा का उत्पीड़न किया,

परंतु उनके कार्यों को धर्म की तुला पर तोलने के प्रजा के अधिकार को वे नहीं छीन सके। धर्म का तेज मनुष्य की रक्षा करता है, अधर्म मनुष्य को खोखला कर डालता है—यह विश्वास संप्रदायवाद के लिए लागू नहीं है, सत्यात्मक धर्म या आचार ही इससे अभिप्रेत है।

भारतीय विचार-पद्धति में आचार या करनी का बड़ा महत्व है। कवि ने सरल शब्दों में कहा है—

का भा जोग कथनि के कथे। निकसे घिउ न बिना दधि मथे।

(*जायसी*)

"भारत जन की मातृभूमि का देवतात्मा रूप बहुत प्राचीन है। उसमें अनेक आदर्शों का सन्निवेश है। राष्ट्रीय जन को उससे प्रेरणा ग्रहण करनी उचित है। अत्यधिक नियंत्रण और अनुशासन भारतीय पद्धति के अनुकूल नहीं है। आदर्शों से प्रेरित जनता स्वयं अपने मन की उमंग से जितना निर्माण कार्य कर सकती है, उतना बंधन से नहीं।"

आचारवान् व्यक्ति ही इस समाज में प्रतिष्ठा पाता रहा है। सार्वजनिक जीवन और व्यक्तिगत जीवन का भेद भारतीय हृदय नहीं स्वीकार करता। यह खिन्न होने की बात नहीं, यह तो हमारा जातीय सद्‌गुण है।

आचार और जीवन में जब खाई बन जाती है तब समय-समय पर द्रष्टा और विचारक, संत और महापुरुष आकर उसे पाटते रहे हैं। इसके कारण विचार आचार की कसौटी पर कसे जाते रहे हैं। वे विचार जिनको उपदेष्टा के आचार का बल नहीं मिला, सीधे खड़े नहीं हो सके। पृथ्वी पर रेंगने वाले विचारों को भला क्या सम्मान मिल सकता है? आचार-योग ही समाज के जीवन की प्रतिष्ठा-भूमि रहा है। राम का आदर्श, जो इस भूमि का राष्ट्रीय आदर्श है, आचार- योग का ही दूसरा नाम है। वाल्मीकि ने स्वयं राम की जो कल्पना की है, उसके अनुसार 'रामो विग्रहवान् धर्म'—राम शरीरधारी धर्म है (अरण्य. 38/13)। लोक में गूँजने वाला धर्म का संदेश राम के शब्दों में इस प्रकार है—

'सत्य ही सनातन राजवृत्त है, इसलिए राज्य की नींव सत्य पर है, सत्य से ही लोक प्रतिष्ठित है। ऋषि और देव सत्य को ही श्रेष्ठ मानते हैं। अनृतवादी मनुष्य से लोग ऐसे डरते हैं जैसे साँप से। सत्यपरायण धर्म ही सब का मूल है। सत्य ही लोक का ईश्वर है, धर्म सत्य के ही आश्रित है। सत्य से परे और कुछ नहीं है। दान, यज्ञ और तप, सब सत्य के बल पर टिके हुए हैं। वेद भी सत्य पर प्रतिष्ठित है। इसलिए सत्यपरक होना चाहिए। अकेला सत्य ही लोक का पालन करता है, वही कुलों की रक्षा करता है। मैं अवश्य सत्य की ही रक्षा करूँगा। मेरे लिए यह असंभव है कि लोभ से, मोह से या अज्ञान से किसी भी तरह मैं सत्य की मर्यादा का उल्लंघन करूँ। सत्य प्रत्येक व्यक्ति के भीतर रहने वाला (प्रत्यगात्मा) धर्म मुझे जान पड़ता है। यदि मैं असत्य का आचरण करूँगा तो क्षात्र-धर्म से पतित हो जाऊँगा। यह भूमि, कीर्ति, यश और लक्ष्मी, सब सत्यवादी के लिए है। मैं कार्य-अकार्य को जानता हुआ श्रद्धा के साथ लोक-जीवन का निर्वाह करूँगा। यह लोक कर्मभूमि है। यहाँ आकर शुभ कर्म करना चाहिए। अग्नि, वायु, सोमादि देव भी कर्म का ही फल भोग पाते हैं। सत्य, धर्म, शौर्य, भूतानुकम्पा, प्रिय वचन, यही एकोदय धर्म है, लोकागम की इच्छा रखने वाले पुरुष जिसका आचरण करते आए हैं।'

धर्म का ऊपर कहा हुआ आदर्श जीवन के भीतर से पनपता है। इस मार्ग का अनुयायी जीवन से भागता नहीं, वह उसे कर्म के जल से सींचता है। हमारे राष्ट्र-निर्माता ने जब राम-राज्य की बात कही तब वह निरी कल्पना न थी, उनके मन में राम के बताए हुए इसी सत्यात्मक धर्म और सर्वोदय की भावना भरी थी। यह धर्म दृढ़ कर्म-शक्ति पर आश्रित है। ययाति की तरह राष्ट्र का जन जब यह सोचने लगे कि मुझे वह नहीं चाहिए जिसके लिए मैंने प्रयत्न नहीं किया है, तभी कर्म और धर्म का सच्चा मेल कहा जा सकता है। कर्म से ही सिद्धि मिल सकती है। इसी निष्ठा से मातृभूमि के प्रत्येक व्यक्ति को कर्म की दीक्षा ग्रहण करनी है।

भारत जन की मातृभूमि का देवतात्मा रूप बहुत प्राचीन है। उसमें अनेक आदर्शों का सन्निवेश है। राष्ट्रीय जन को उससे प्रेरणा ग्रहण करनी उचित है। अत्यधिक नियंत्रण और अनुशासन भारतीय पद्धति के अनुकूल नहीं है। आदर्शों से प्रेरित जनता स्वयं अपने मन की उमंग से जितना निर्माण कार्य कर सकती है, उतना बंधन से नहीं। अतएव सत्यात्मक आदर्शों की ओर चलने की प्रेरणा देकर जनता को कृतकार्य होने का अवसर देना ही भारतीय पद्धति के अनुकूल है। सत्य के तेज से मन के आवरण स्वयं हटने लगते हैं। भारतीय जनता को उसी स्थिति की आवश्यकता है। मातृभूमि का जो सत्यात्मक रूप हमें उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ है, उसी की उपासना करनी चाहिए। प्रत्येक को मातृभूमि की शरण में जाना है। माता भूमि ही युग का अधिष्ठात्री देवता है। उसी की उपासना करो—

'उपसर्य मातर भूमिम्'

—ऋ. 10/18/90

माता पृथ्वी अपने महान पुत्रों के महत्व से ठहरी है—

'महामहद्‌भि पृथिवी वितस्ये
माता पुत्रेरदितिधार्यसे वे।'

—ऋ. 1/72/9

अतएव जो पृथिवी-पुत्र है, उन्हें राष्ट्र में चलने के लिए अमृत के नए मार्ग बनाने चाहिए।

अहं तु नाभिगुह्णामि यत्कृतं न मया पुरा।

—*मत्स्य पुराण* 42/11

(सन् 1949 में नेहरू अभिनंदन ग्रंथ में प्रकाशित लेख का अंश)

संस्कृत में अस्मिता तलाशती स्पेनिश बाला मारिया

संस्कृत को उसे जीविका का माध्यम भी नहीं बनाना था, उसके पास ब्रिटिश एअरवेज की अच्छी-खासी नौकरी थी। उसे सुख-सुविधा की तलाश भी नहीं थी, उसके भरे-पूरे स्पेनिश परिवार में किसी बात की कमी भी नहीं थी। भाषा सीखने का जुनून भी नहीं था, वह स्पेनिश, जर्मन और अंग्रेजी धारा प्रवाह बोल लेती थी। फिर भी जीवन से जुड़े कुछ प्रश्न थे, जिनके बारे में उसे पता चला कि उनके जवाब भारतीय दर्शन में मिलेंगे, जिसका माध्यम संस्कृत भाषा है। इन्हीं सवालों के जवाब तलाशने वह अपना देश, घर-परिवार, अपना परिवेश, अपनी नौकरी छोड़कर भारत आ गई। देववाणी में ऐसी रमी कि बाबुल घर भूल गई। संस्कृत में सर्टिफिकेट कोर्स से हुई शुरुआत ने देववाणी के प्रति ऐसा जुनून पैदा किया कि आचार्य तक की पढ़ाई कर डाली। वह भी संस्कृत के उस विषय पूर्व मीमांसा में, जो कर्मकांड और भारतीय दर्शन पर आधारित था, जिसे लेने में भारतीय विद्यार्थी भी कतराते हैं। उसने केवल आचार्य की परीक्षा ही पास नहीं की, बल्कि वह बनारस के संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय के दो सौ साल के इतिहास में टॉप करने वाली पहली विदेशी छात्र भी बनी। हिंदी भी सीखी और संस्कृत भी। उसका पहनावा साड़ी हो गई। भारतीय जीवन दर्शन और योग में ऐसी रमी की उसकी दिनचर्या सुबह तीन बजे शुरू हो जाती है। योग मंत्रोच्चारण से दिन की शुरुआत। सात समंदर पार से आई मारिया रूईस आज भारत की होकर रह गई है। उसके रोम-रोम में संस्कृत और भारतीय जीवन दर्शन रमता है।

अरुण नैथानी

शिक्षा : एम.ए. (अर्थशास्त्र, इतिहास, हिंदी, जनसंचार)।

लेखन : पत्रकारिता के क्षेत्र में पिछले 30 वर्षों से सक्रिय, वर्तमान में 'दैनिक ट्रिब्यून' में संपादकीय एवं साहित्य पृष्ठ का संपादन करते हैं। देश के प्रतिष्ठित अखबारों में दो हजार से अधिक लेख, फीचर, रिपोर्ताज, न्यूज फीचर, साक्षात्कार, पुस्तक समीक्षाएँ प्रकाशित।

सम्मान : हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा देशबंधु गुप्त सम्मान, साहित्यिक पत्रकारिता के लिए पंजाब कला साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित।

संपर्क : मोबाइल– 9815121800

ईमेल– arun.naithani@gmail.com

एक वक्त एयर-होस्टेस के रूप में आसमान से बात करने वाली स्पेन की मारिया रूईस की संस्कृत व भारतीय दर्शन में इतनी गहरी उत्सुकता जगी कि वह सब-कुछ छोड़कर भारत आ गई। संस्कृत व प्राच्य विद्याओं के अध्ययन में इतनी रमी कि न केवल संस्कृत के पूर्व मीमांसा जैसे कठिन विषय में आचार्य बनी, बल्कि सभी भारतीय छात्रों को पछाड़ते हुए स्वर्ण पदक पाने में सफल रही। हाल ही में उत्तर प्रदेश की राज्यपाल आनंदी बेन पटेल ने उन्हें आचार्य की डिग्री और स्वर्ण पदक प्रदान करके सम्मानित किया। दरअसल, मारिया रूईस ने यूँ तो कई भाषाएँ सीखी थीं और उनके पास अच्छी-खासी नौकरी भी थी, लेकिन संस्कृत

सीखना उनके लिए एक भाषा सीखने से बढ़कर था। उनका अध्यात्म के प्रति रुझान संस्कृत सीखने के प्रति निश्चय दृढ़ कर गया। आज वे कहती हैं कि यदि पूरे विश्व का ज्ञान लेना है तो प्राचीन भाषा संस्कृत पढ़ें। यह निश्चय करके वे आठ साल पहले भारत आईं और भारतीय रंग-संस्कारों में रम गईं।

इसमें दो राय नहीं कि आज भारत में भले ही नई पीढ़ी का रुझान संस्कृत पढ़ने में न हो, लेकिन पूरी दुनिया में इसका सम्मोहन बरकरार है। इसकी वैज्ञानिकता और इसके जरिये भारतीय प्राच्य विद्याओं तक पहुँचने के लिए वे इसे पढ़ना चाहते हैं। मारिया की गहरी टिप्पणी से इस बात को महसूस किया जा सकता है। उसका कहना है कि मैंने संस्कृत का अध्ययन नौकरी पाने के लिए नहीं किया। मेरा लक्ष्य ज्ञान हासिल करना था। जब हमें ज्ञान मिल जाता है तो बाकी चीजें गौण हो जाती हैं। इसके बावजूद संस्कृत में रोजगार के तमाम अवसर हैं। मारिया भारत आई तो थीं संस्कृत में

सर्टिफिकेट कोर्स करने के लिए, मगर वह संस्कृत से इस कदर सम्मोहित हुईं कि संस्कृत में शास्त्री डिग्री करने के बाद आचार्य की डिग्री हासिल करने में सफल हुईं।

दरअसल, मारिया का भाषाओं को सीखने के प्रति गहरा रुझान था। हालाँकि, वह पहले से ही स्पेनिश, जर्मन और अंग्रेजी भाषा जानती थीं। उन्होंने बार्सिलोना से सोशल वर्क में डिग्री भी प्राप्त की थी, लेकिन अध्यात्म को लेकर उनके मन में कई सवाल उठते थे। उन्हें भाषा विज्ञान के विद्वानों ने बताया कि संस्कृत का आधार वैज्ञानिक है

"सात समंदर पार से आई मारिया अब कहती हैं कि दुनिया का ज्ञान हासिल करने के लिए संस्कृत पढ़ना जरूरी है, जो भारतीय संस्कृति, जीवन-दर्शन की प्रासंगिकता को दर्शाता है। एयर-होस्टेस की नौकरी छोड़कर स्पेन से संस्कृत सीखने आईं मारिया रूईस ने संस्कृत विश्वविद्यालय में अव्वल स्थान प्राप्त कर संस्कृत विद्वानों को चौंकाया है।"

और इसको लेकर कई अनुसंधान भी हुए हैं। उनके प्रश्नों के जवाब संस्कृत भाषा के अध्ययन से ही मिलेंगे। फिर उन्होंने भारत आकर संस्कृत सीखने का संकल्प किया। मारिया ने भारत आकर न केवल संस्कृत सीखी, बल्कि हिंदी में भी दक्षता हासिल की। वह भारतीय

संस्कृति संबंध परिषद के आदान-प्रदान कार्यक्रम के तहत भारत आई थीं। उन्होंने मौके को अवसर में बदलकर आज संस्कृत व हिंदी में दक्षता हासिल कर ली है।

आज वह अपने शिक्षकों व सहपाठियों के साथ संस्कृत में संवाद करती हैं। बनारस के प्रतिष्ठित संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय से आचार्य यानी परास्नातक डिग्री हासिल करने वाली मारिया अन्य विदेशी छात्रों के साथ वाराणसी के वैदिक गुरुकुल में रहती हैं। वह भारतीय जीवन-दर्शन व संस्कारों में रम गई हैं। वह साड़ी पहनती हैं। उन्होंने संस्कृत-हिंदी सीखने के साथ भारतीय संस्कृति के अवयवों को भी आत्मसात् किया है। वह ब्रह्म मुहूर्त में उठती हैं। तड़के तीन बजे

उनकी दिनचर्या आरंभ होती है। उन्होंने योग भी सीखा है। वह गुरुकुल में रहने वाले बच्चों को योग, ध्यान व संध्या भी सिखाती हैं। उसके बाद वह विश्वविद्यालय अध्ययन के लिए जाती हैं।

दरअसल, मारिया जब भारत आईं तो उसके मन में तमाम तरह के सवाल थे, मसलन कि क्या मैं संस्कृत सीख पाऊँगी? लेकिन वह आखर ज्ञान हासिल करने से लेकर आचार्य की डिग्री तक पाने में सफल रहीं। उसकी तपस्या सार्थक हुई। इसका श्रेय वह अपने गुरुओं को देती हैं। वह भारत में रहकर संस्कृत में पी-एच.डी. करना चाहती हैं। बहरहाल, समर्पण व लगन से मारिया ने एक इतिहास रचा है। प्रतिष्ठित संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय के दो सदी के इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ है कि किसी विदेशी छात्र ने विश्वविद्यालय में सर्वोच्च अंक हासिल किए हों। दरअसल, पूर्व मीमांसा में भाषा के अलावा वैदिक कर्मकांड व दर्शन से जुड़े विषयों का अध्ययन होता है। एक विदेशी छात्रा का इस विषय में दक्षता हासिल करना निश्चय ही अचरज में डालता है, लेकिन अध्यात्म व भारतीय दर्शन में गहरी रुचि के कारण मारिया ने यह मुकाम हासिल किया।

अब इस मुकाम पर वह न केवल अपने देश स्पेन, बल्कि दुनिया में देवभाषा संस्कृत के प्रचार-प्रसार के लिए काम करना चाहती हैं। संस्कृत की विदुषी मारिया रूईस उत्तर प्रदेश की राज्यपाल के हाथों स्वर्ण पदक हासिल करने से खासी उत्साहित हैं। सात समंदर पार से आई मारिया अब कहती हैं कि दुनिया का ज्ञान हासिल करने के लिए संस्कृत पढ़ना जरूरी है, जो भारतीय संस्कृति, जीवन-दर्शन की प्रासंगिकता को दर्शाता है। एयर-होस्टेस की नौकरी छोड़कर स्पेन से संस्कृत सीखने आई मारिया रूईस ने संस्कृत विश्वविद्यालय में अव्वल स्थान प्राप्त कर संस्कृत विद्वानों को चौंकाया है। मारिया ने न केवल हिंदी-संस्कृत सीखी, बल्कि वैदिक कर्मकांड व प्राच्य विद्याओं में भी दक्षता हासिल की है, जो संस्कृत के उज्ज्वल भविष्य की उम्मीद जगाता है।

साँझा चूल्हा

थककर बचने ने अपने छोटे भाई संतु को मारा और घर से निकाल दिया।

संतु कभी किसी की कपास उठाता पकड़ा जाता, कभी भुट्टा तोड़ता। खेत वाला जाट मुक्का मारकर संतु को चोरी की फसल की गठरी उठवाता और बचने के आगे लाकर खड़ा कर देता। बचना हर रोज आती शिकायतों से थक गया था।

संतु घर से निकलकर साधुओं के डेरे में चला गया। यहीं से उसको अफीम की लत लग गई। वह सारा दिन डेरे में अफीम खाकर पड़ा रहता। एक दिन साधु ने भी उसको चिमटा मारकर भगा दिया।

अफीम संतु की हड्डियों में रम चुकी थी। 22 साल की उम्र में ही उसका जबड़ा निकल आया, आँखें अंदर धँस गईं और घुटने बजने लगे।

उसका बाप हरनाम सिंह जीवित था। उसने जवानी के समय जद्दी जमीन बेचकर फैलसूफियों में उड़ा दी थी। अब सारी जिम्मेदारी बचने के सिर पर आ गई। वह ठेके पर जमीन लेकर खेती करने लगा।

बचने की पत्नी भजनो छह भाइयों की इकलौती बहन थी। तीन मील पर उसका मायका था। बदमाश छह भाइयों का उसको हौसला था और बचने की मदद। कोई दुख आया होता, फसल काटनी होती या गाँव में किसी से लड़ाई हो जाती तो छह साले जिन्नों की तरह आ खड़े होते। इसलिए छह सालों के इकलौते जीजा को हर कोई जमीन ठेके पर दे देता।

संतु को जब बचने ने जूते मारकर घर से निकाला तो रिश्तेदारों ने बचने का ही पक्ष लिया।

संतु को चारों तरफ से धक्के पड़े तो वह मंडी में जाकर हलवाइयों की कड़ाहियाँ साफ करने लगा। जो कुछ कमाता, वह अफीम पर लगा देता। पाँच-छह महीने मशक्कत करके वह फिर गाँव में आ गया और शरीफों के घर से माँगने लगा।

जाटों का लड़का अपने ही गाँव में भिखारी बन जाए, इससे बड़ी नामोशी कोई नहीं। महीना-बीस दिन तो इसी तरह निकला। जिसके घर जाता, वह शर्म के मारे उसकी झोली में मुट्ठी भर दाने देता। पर फिर सिर पर बैठे बाप की सफेद दाढ़ी की लाज के कारण लोगों ने बोला, "भाई संतु, तुम माँगा मत करो। खाना किसी के भी घर जाकर खा आया करो।"

महीनों से गुस्से से भरा बचना उसकी हरकतों को देखता रहा था। एक दिन बचने ने उसको गली में पकड़ लिया और जूतों से पीटा। लोगों ने बड़ी मुश्किल से उसे छुड़वाया।

बचना दाँत पीसकर बोला, "आज के बाद अगर गाँव में घूमता देख लिया तो साले की टाँगें तोड़ दूँगा।"

संतु उसके बाद गाँव छोड़ गया और सात साल उसका पता न चला।

जब भजनो के छह भाइयों का बँटवारा हो गया तो सबकी जिम्मेदारी अलग-अलग

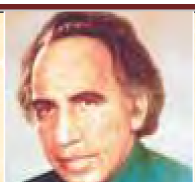

बलवंत गार्गी

बलवंत गार्गी (1916-2003) पंजाबी भाषा के लेखक, नाटककार, फिल्म निर्देशक, उपन्यासकार, लघुकथा लेखक थे। उन्होंने दो वर्ष वाशिंगटन विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य भी किया। साहित्य की उत्कृष्ट सेवा के लिए उन्हें पद्मश्री पुरस्कार प्रदान किया गया है। वे उन चंद लोगों में से एक हैं जिन्हें साहित्य अकादेमी और संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया।

हो गई। आपस में उनकी लड़ाई होने लगी। बचने को अपने सालों की मदद मिलनी बंद हो गई। अब तो कोई न दुख-सुख में आता, न कटाई के समय, न लड़ाई-झगड़े के समय आता।

एक साल बारिश बहुत हुई तो बचने से समय पर जमीन की जुताई कर बिजाई न हुई; अगले साल सूखा पड़ गया तो खड़ी हुई फसल सूख गई।

एक बार वह जुलाहे के लड़के के साथ लड़ पड़ा और उसको गाली दी। जुलाहे ने मौके पर ही बचने की पिटाई कर दी। उसकी

सारी हवा निकल गई। उतरी हुई पगड़ी पकड़े और चेहरा सुजाकर जब बचना घर आया तो उसने दोनों हाथों से सिर पकड़ लिया।

अब उसे संतु याद आया, जिसको उसने बेदर्दी के साथ इतना मारा था कि वह बेचारा गाँव छोड़ गया था।

भजनो आँसू पीकर बोली, "अगर आज संतु साथ में होता तो इन कुत्ते जुलाहों की क्या मजाल थी कि तुम्हारी तरफ देख लेते। प्यार से समझाकर छोटे भाई को काम पर लगाया होता तो घर में बरकत होती। भाई को भाई से तोड़कर तुमने अपनी दाईं बाजू तो अपने आप काट ली।"

बचना दिल में पछताया।

कई बार बचना और भजनो पुराने दिनों को याद करके उदास होते। बूढ़े हरनाम सिंह को भी इस बात का अफसोस था कि उसका एक पुत्र जाता रहा। कभी-कभी वह भी इस बात को जताता था कि बाप के जीवित रहते हुए बचने को क्या हक था कि छोटे भाई पर हाथ उठाए।

बचने का परिवार बड़ा हो गया था। भजनो हर साल गर्भवती होती। अब उसके चार पुत्र और तीन बेटियाँ थीं, जो कच्चे आँगन में ही जानवरों की तरह मिट्टी में गंदे होकर भजनो का सिर खाते। गाँव की लड़कियों की एक टुकड़ी की शादी हो गई थी, पर हरनाम सिंह को कोई फर्क नहीं पड़ा था। उसकी सफेद दाढ़ी, वही फलाही की दातुन और तेल के साथ सना हुआ उसका वही जूता।

फागुन का महीना था। खेतों में सरसों उगी हुई थी। आँगन में बैठी भजनो ने ससुर की बसंती पगड़ी रँगकर दीवार पर सूखने के लिए डाली हुई थी और पीढ़े पर बैठी थापी से कपड़े धो रही थी।

इतने में लंबा, सुडौल एक नौजवान मेहराबी दरवाजे में से निकलकर सीधा अंदर आता दिखाई दिया। उसके पीछे-पीछे सलवार-कुर्ती डाले और गोटे वाली चुनरी के साथ घूँघट निकाले तथा सिर के ऊपर फूलों वाला ट्रंक रखकर कोई चली आ रही थी।

भजनो ने झट से फटी चुनरी सिर पर ली। सोचने लगी : 'यह कौन आ रहा है मुँह उठाकर? न हुंकार, न आवाज। लगता तो ऐसे है... जैसे संतु हो!'

"पैरी पौना करता हूँ भाभी!" संतु आगे बढ़कर बोला।

भजनो ने खुशी और हैरानी के साथ देवर का स्वागत किया और घूँघट वाली की तरफ इशारा किया।

"तुम्हारी देवरानी है," संतु ने नखरे के साथ कहा।

भजनो बोली, "धन्य भाग हमारे जो तुम घर वापस आए। हमारी तो आँखें ही रह गई तुम्हारा रास्ता देखते।" फिर वह देवरानी की तरफ बढ़ी और बोली, "लड़की ने घूँघट क्यों निकाला है? तुम्हारा जेठ तो शाम को वापस आएगा।"

उसने संतु की पत्नी का घूँघट उठाया। साँवला रंग, मोटे होंठ, थोड़ी मुड़ी हुई नाक और नाक में लौंग। मोटी-मोटी आँखों में सुरमा डाला हुआ था, जिससे वे चमक रही थीं।

भजनो खुशी और हलकी ईर्ष्या के साथ बोली, "ओए संतु, इतनी सुंदर बहू कहाँ से ढूँढ़ लाया?"

उसने चारपाई लगाकर चादर बिछाई, फूलों वाले ट्रंक को कोठरी में रखा और काढ़णी में से दूध निकालकर कंगनी वाले दो गिलासों में डालकर उनके आगे रख दिया।

उस वक्त अपने दो लड़के बचने को खेतों में से बुलाने के लिए भेज दिए।

तलाश कर पूरा परिवार इकाई हो गया। हरनाम सिंह ने नई बहू के सिर पर हाथ रखा और बोला, "बचना तुम्हारे पीछे से बहुत पछताया। अब दोनों भाई मिल-जुलकर रहो।"

संतु ने पिता की बात सुनी और चुप रहा। सात साल इधर-उधर धक्के खाकर वह समझदार हो गया था। जिंदगी की ठोकरें खाकर उसने अफीम भी छोड़ दी थी। चेहरा भर गया था और चाल में भी नौजवानों वाली बात थी। किसी ने नहीं पूछा कि वह औरत कहाँ से लाया और शादी कैसे की?

संतु अपनी बीवी को 'भागी' कहकर बुलाता था। शायद इसलिए कि वह भाग्यशाली थी, जिसने उसकी अफीम भी छुड़वा दी या इसलिए कि वह घर से भागकर आई थी। यह नाम उसके चरित्र के अनुसार था।

इतने सालों के बाद संतु के दिल में अपने बड़े भाई के विरुद्ध गुस्सा अभी भी था।

गाँववालों के आगे यह साबित करने के लिए कि अब संतु अमली नहीं रहा था, बल्कि अपने पैरों पर खड़ा होने और कमाने वाला व्यक्ति बन चुका था, उसने अपना हिस्सा माँगा।

हरनाम सिंह के लिए दोनों पुत्र बराबर थे और दोनों पुत्रवधू भी एकसार। उसने अंदरखाने दोनों को बराबर हिस्से बाँटे। खुले आँगन में कच्ची ईंटों की छोटी दीवार निकलवा दी। दो कमरे एक तरफ और दो कमरे दूसरी तरफ। एक भैंस संतु के हिस्से आई। बाहर वाला घर भूसा डालने और पशु बाँधने के लिए साँझा था। यहीं पर ही बूढ़ा बाप आप रहता। उसने अपनी अकलमंदी के साथ दोनों घरों में बराबर व्यवहार रखा। जिस चूल्हे पर अपनी मर्जी पर आ बैठता, वही पुत्रवधू सत्कार से खाना लगा देती।

कच्ची दीवार निकलने के साथ दोनों भाइयों में पक्का फर्क पड़ गया।

संतु की अंदरूनी शक्तियों को अफीम ने बाँध रखा था; अब इससे मुक्त होकर उसके मन और शरीर में काम करने की भावना जागी। उसने ठेके पर जमीन लेकर खेती शुरू की। दो साल में ही उसकी खुरली के ऊपर बैलों की दो जोड़ियाँ और तीन भैंसें खड़ी थीं। पीतल की फुलिया से जड़ा गड्ढा भी उसने बनवा लिया था।

उसके विपरीत बचना और भजनो बच्चों की बागडोर में रुल गए थे। एक बेटी शादी के काबिल हो गई थी। बड़े लड़के को माता निकली और पिता दवाइयाँ लेकर आता और माँ साधुओं के आगे माथे रगड़ती रहती। इन दो वर्षों में उनकी हालत खराब हो गई थी।

संतु अपना बाप छोड़कर लोगों के बीच जाकर बैठता और गर्व से अपनी प्राप्तियों की बातें करता। बचने ने कई बार कोशिशें भी की कि दोनों भाई पिता की इज्जत के लिए मिलकर काम करें तो फसल ज्यादा होगी और गाँव में भी इज्जत होगी। अब दो जगह चूल्हा था, इसलिए दुगुना खर्चा था। साँझा चूल्हा होने में सौ फायदे, परंतु संतु बड़े भाई के साथ मिलकर रहने को तैयार नहीं था।

एक-दो बार हरनाम सिंह ने समझाया, "संतु, तुम्हारे बड़े भाई की जिम्मेदारी बढ़ गई है। अब तुम्हारा धर्म बनता है कंधा लगाने का।"

लोगों ने भी यही मशविरा दिया कि पिता के बैठे दोनों भाइयों का अलग-अलग रोटी बनाना शोभा नहीं देता। अगर संतु को बड़े भाई ने अफीम की लत छुड़वाने के लिए दो पैसे लगा भी दिए थे तो कौन-सी आफत आ गई थी। शायद उसके द्वारा लगाए हुए पैसे की वजह से आज उसका घर बसा हुआ था।

इन सब बातों का संतु तोड़कर जवाब देता, "हर एक ने अपने भाग्य का ही खाना होता है। अगर अब बचने का परिवार बड़ा हो गया तो मैंने ठेका ले लिया है क्या उनको पालने का?"

भजनो कई बार यह भी सोचती कि जब से अभागी किस्मत वाली भागी ने पैर डाला है, उनके घर का तो सत्यानाश हो गया, उनका घर तो मानो खाली होने जैसा हो गया है। फसलों का समय से पहले खराब होना, बच्चों को बीमारियाँ, पशुओं को सूखे ने मार लिया था। उसको जाटों वाले साधु ने सारी मुसीबतों का कारण भागी को ही बताया था।

रोटियाँ बनाती भजनो देवरानी को गालियाँ निकालती, "इस भूखे घर की औरत ने हमारा घर खा लिया। हे भगवान, कीड़े पड़ जाएँ इसके।"

अगर उसकी बड़ी बेटी चाची के पास दो घड़ी बैठ जाती तो भजनो उसको चोटी से पकड़कर चीखती, "तू भी किसी लड़के के साथ भागकर हमारा मुँह काला करवा देगी, पगली। अगर फिर देख लिया उस कंजरी के पास बैठी तो तेरी आँखों में जलता-जलता तेल डाल दूँगी।"

कई बार फट्टे के ऊपर कपड़े-धोती डालते अकेली ही ऊँची आवाज में सुनाकर बोलती, "न आगे, न कोई पीछे। कुतिया पटरानी बनकर घूम रही है। पता नहीं, किस-किसका निकलवाया होगा? अब माँग रही है बच्चों की जोड़ियाँ।" कपड़ों को पटकाकर वह कच्ची दीवार के ऊपर डालती और गुस्से में उबलती हुई बोलती, "भगवान करे, यह भी पति की तरह माँगती घूमे।"

भागी जेठानी की दुरासीसों को सुना-अनसुना कर छोड़ देती। उसका सुंदर शरीर आँगन में ठाठा मारता। भजनो, जिसका बच्चे पैदा कर बुरा हाल हो गया था, भागी की सुंदरता को देखकर जलती रहती।

एक शाम उसकी बड़ी बेटी करतारी साग तोड़कर बाहर के अँधेरे में से वापस आई तो भजनो उसका चेहरा देखकर घबराई और उसको गले से पकड़कर पिछले कमरे ले गई। माँ-बेटी के बीच में कोई गहरी बात हुई! रात को भजनो और बचना बहुत देर तक खुसुर-पुसुर करते कोई विचार करते रहे।

उन्होंने करतारी की शादी की बात बस एक दिन ही की थी और महीने के अंदर-अंदर लड़का ढूँढ़कर शादी रख दी। रुपये पकड़ाने तक उन्होंने इस बात की बाहर बात तक न निकाली। हरनाम सिंह से भी बुजुर्ग होने के नाते कोई सलाह-मशविरा न किया।

बेटी की शादी में देवरानी-जेठानी इकट्ठी हो गईं। उनके अंदर-ही-अंदर चाहे

"कई बार फट्टे के ऊपर कपड़े-धोती डालते अकेली ही ऊँची आवाज में सुनाकर बोलती, "न आगे, न कोई पीछे। कुतिया पटरानी बनकर घूम रही है। पता नहीं, किस-किसका निकलवाया होगा? अब माँग रही है बच्चों की जोड़ियाँ।" कपड़ों को पटकाकर वह कच्ची दीवार के ऊपर डालती और गुस्से में उबलती हुई बोलती, "भगवान करे, यह भी पति की तरह माँगती घूमे।""

कितनी कड़वाहट थी, पर इस मौके पर भाईचारे और शरीकों के रीति-रिवाजों के बड़े कार्यों की पूर्ति के लिए उनको जोड़ दिया। इकट्ठे दाल दली, दहेज तैयार किया और रात में गीत भी गाए।

करतारी की शादी के बाद कुछ दिनों तक उनमें बनी रही, फिर पहले की तरह दोनों में वही बातें होने लगीं। भागी को कोई औलाद नहीं हुई थी। वह अपनी खाली गोद का दोष भजनो की काली जुबान के ऊपर लगाती थी।

एक दिन दोपहर के समय जब भजनो ने अपने ससुर की पगड़ी को मावा लगाकर कच्ची दीवार पर डाला तो चावलों की पिच का बरतन देवरानी की तरफ फेंक दिया और बुड़-बुड़ करती, बरतन तोड़ती भागी का अगला-पिछला पूछने लगी।

भागी, जो आमतौर पर उसकी हरकतों को नीच समझती थी, आज भड़क उठी।

दोनों के बीच जोर की झड़प हुई। भजनो बोली, "बेवकूफ औरत! इतना अहंकार है, इसीलिए तो भगवान ने तुम्हारी गोद नहीं भरी। बाँझ मरोगी, बाँझ।"

भागी की आँखों में से आँसू निकले। वह जोर से बोली, "मैं जानती हूँ, तुमने जो बूढ़े पर डोरे डाल रखे हैं! कुतिया, बाहर वाले घर में पशुओं का दूध निकालने जाती है या मुँह काला करने? बूढ़े की चारपाई से आवाजें आती हैं तो सारा गाँव सुनता है।"

भजनो बेफिक्र और ऊँची आवाज में बोली, "तुम्हारे पति ने तुम्हें सिर पर चढ़ा रखा है, गुंडी औरत! अगर अब और कुछ बोली तो कड़छी मारकर सिर फाड़ दूँगी।" यह बोलकर उसने कड़छी ऊपर उठाई और छोटी दीवार के उस तरफ खड़ी भागी पर चला दी। भागी एक तरफ हो गई और कड़छी रसोई में बरतनों पर जा लगी।

भागी जोर से बोली, "चुप हो जा बेवकूफ औरत! मुझे पता है, जहाँ तेरी बेटी गू खाकर आई थी। घड़े जैसा पेट था तेरी बेटी का, जब उसकी शादी हुई।"

यह बात सुनकर भजनो का मुँह खुला-का-खुला रह गया। वह गाली देने वाली थी, पर भागी के शब्द मुक्के की तरह उसके कलेजे में जा लगे और वह चुप हो गई।

उस वक्त बचने के अंदर दाखिल होने और जूता साफ करने की आवाज सुनाई दी। भागी के अंतिम बोल उसने दरवाजे पर अंदर आते सुन लिए थे।

बचने को देखकर दोनों चुप हो गईं।

उस दिन के बाद भजनो ने देवरानी को गाली निकालना बंद कर दिया।

रात को वह छत पर पड़ी बचने के साथ धीरे-धीरे बातें करती। उसकी आवाज अँधेरे में बहुत दूर तक सुनाई देती।

भजनो बाहर वाले घर पशु सँभालने और पशुओं का गोबर-कूड़ा करने जाती तो ससुर से परदा करे रखती और काम की ही बात करती। भागी जब अपनी भैंसों के लिए चारा डालने या उपले बनाती तो गर्व के साथ चलती और सीना तानकर शरीक औरतों के पास से गुजरती।

हरनाम सिंह घर खाना खाने आता तो भी भजनो का व्यवहार शर्मीला-सा होता। पहले के जैसे खुलकर बातें करना अब जाता रहा।

फिर भजनो ने अपने ससुर के साथ पता नहीं क्या बात की कि वह शाम के समय पहले की तरह बाहर जाकर लोगों के साथ बातें करने की जगह अकसर बाहर वाले घर में रहने लगा। शायद उसको अपने दोनों पुत्रों के बीच की दरार और दोनों पुत्रवधू द्वारा घर को बर्बाद करने का गम था।

एक दिन शाम के समय भागी दूध निकालने के लिए बाहर वाले घर में गई। उसने बछड़ा छोड़ा। टाँग मारकर जब भैंस बिगड़ गई तो वह बछड़े को जोर से खींचकर बाँधने लगी।

इतने में बचने ने पीछे से आकर भागी को पकड़ लिया। एक हाथ से उसका मुँह दबाया और दूसरे से कमर को झप्पी डाली। हैरान हुई भागी ने शोर मचाने की कोशिश की और टाँगें मारीं। उसी समय भजनो डरकर उसकी टाँगों से आ चिपकी। दाँत पीसते बचना और भजनो हाथ-पैर मारती भागी को उठाकर भूसे वाले कमरे में ले गए और पुरानी चारपाई पर दबोच लिया।

उसी समय बाहर से हरनाम सिंह कमर बाँधे पटके को खोलता अंदर दाखिल हुआ। बचना ने भागी के मुँह में चुनरी घुसेड़कर ऊपर से परना बाँध दिया। भजनो ने बुड्ढे को बाजू से पकड़कर चारपाई पर धक्का दे दिया और दोनों पति-पत्नी ने बाहर निकलकर दरवाजा लगा दिया।

भागी की आवाजें भूसे वाले कमरे में ही थम गईं।

कुछ दिनों बाद लोगों ने देखा कि आँगन के बीच की दीवार टूट गई थी। भजनो के चूल्हे पर बैठी भागी रोटियाँ पका रही थी और भजनो खुद बड़ी चाटी में दूध बिलो रही थी।

(यह कहानी डॉ. रवि रविंदर द्वारा संपादित, डॉ. प्रीत अरोड़ा व नवजोत कौर मान द्वारा अनूदित और राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से प्रकाशित पुस्तक 'किसानी जीवन की पंजाबी कहानियाँ' से ली गई है।)

अन्न कहाँ से आता है

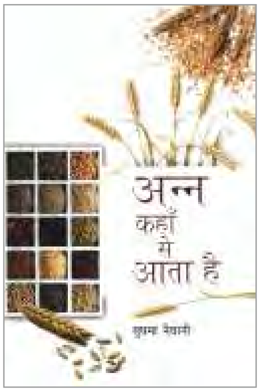

समीक्षक : **रमेश कुमार सिंह**

लेखिका : **सुषमा नैथानी**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 262

मूल्य : रु. 275/-

इस पुस्तक में कृषि का संक्षिप्त इतिहास है, उसका वर्तमान स्वरूप और भूगोल भी। यह पुस्तक बताती है कि फसलों का किस तरह पूरे संसार में प्रसार हुआ। इसमें उन कृषि वैज्ञानिकों की देन को भी याद किया गया है, जिनकी मेधा और मेहनत की बदौलत आज दुनिया की विशाल आबादी का पेट भर रहा है। पुस्तक परंपरागत खेती की सीमाओं और आधुनिक खेती से उत्पन्न समस्याओं का विश्लेषण करती है।

मनुष्य भोजन के लिए पहले शिकार और कंद-मूल-फल पर आश्रित था। जलवायु परिवर्तन के कारण शिकार और कंद-मूल-फल मिलने कम हो गए, इसलिए खेती की जरूरत पड़ी। लेखिका के अनुसार, "कृषि का विकास सीधी रेखा में नहीं हुआ, बीच-बीच में लोगों ने इसे छोड़ भी दिया, और फिर अपनाया, फिर छोड़ा। कई सदियों तक लोगों ने शिकार, संग्रह और कृषि के मेल-जोल से अपना जीवनयापन किया। कुल मिलाकर कृषि का इतिहास दस-बारह हजार साल पुराना है।" कृषि की शुरुआत में स्त्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इस कारण पुस्तक में स्त्री को कृषि की जननी बताया गया है।

फसलों और खाद्य पदार्थों के अपने उत्पत्ति केंद्र से पूरे विश्व में फैलने की कई रोचक कहानियाँ इस पुस्तक में हैं। इसमें रूस के महान कृषि वैज्ञानिक निकोलाई बाविलोव का संक्षिप्त जीवन-परिचय भी है, जिन्होंने रूस को भुखमरी से बचाने के प्रयास किए। विडंबना यह कि स्टालिन ने उन्हें जेल में डाल दिया, जहाँ भूख से उनकी मृत्यु हो गई।

सोलहवीं सदी से 19वीं सदी तक चाय, कॉफी, शक्कर आदि व्यावसायिक उत्पादों के लिए बागानों में बड़े पैमाने पर औपनिवेशिक खेती होती रही। इस तरह की खेती के लिए दास बनाने और उनका व्यापार करने जैसी क्रूर प्रथाएँ शुरू हुईं। भारत से गए गिरमिटिया मजदूरों का शोषण भी दासों की तरह किया गया। पुस्तक में औपनिवेशिक बागानी खेती के इस अमानवीय पक्ष की भी चर्चा है। परतंत्र भारत में नील की खेती को भी इसी संदर्भ में देखा जा सकता है।

'खाद की कहानी' शीर्षक अध्याय में जर्मन वैज्ञानिक फ्रित्ज हेबर की कहानी है, जिन्होंने कृत्रिम खाद बनाने का फार्मूला खोजा था। इसके लिए उन्हें 1918 में नोबेल पुरस्कार दिया गया था। उसी हेबर ने जर्मन सरकार की अंधभक्ति में केमिकल वार-फेयर के लिए विषैली गैसें भी बनाईं, जिसके लिए विश्व वैज्ञानिक बिरादरी ने उन्हें धिक्कारा। लेखिका ने यहाँ और अन्य अध्यायों में भी विज्ञान के सकारात्मक और नकारात्मक पक्षों का विश्लेषण किया है।

पिछली कुछ सदियों में क्रॉसिंग द्वारा फसलों और अन्य पौधों की वांछित लक्षणों वाली हजारों नई हाइब्रिड किस्में बनाई गई हैं। पुस्तक में लीनियस, लूथरबैंक, लैमार्क, डार्विन आदि बागवानों और वैज्ञानिकों के कार्यों की चर्चा है, जिन्होंने संसार भर की वनस्पतियों का व्यापक सर्वेक्षण किया और उनके संकरण करने तथा जीवों के उद्विकास के सिद्धांत देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

बीसवीं सदी और आज की कृषि क्रांति में जेनेटिक्स (आनुवंशिकी) की महती भूमिका है। पुस्तक के उत्तरार्द्ध में जेनेटिक्स के कृषि पर प्रभाव से जुड़े अध्याय हैं। मक्का, गेहूँ, धान आदि फसलों की उन्नत किस्मों और आधुनिक कृषि प्रबंधन से भारत सहित दुनिया के अनेक देशों में हरित क्रांति हुई। इससे अनाज के उत्पादन में कई गुना वृद्धि हुई और अकाल तथा भुखमरी से छुटकारा मिला। हरित क्रांति में रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों का अंधाधुंध प्रयोग किया गया। इससे कई नुकसान हुए। हरित क्रांति की उपलब्धियों और इसकी सीमाओं के संदर्भ में लेखिका का कहना है—"हरित क्रांति का लक्ष्य सिर्फ खाद्यान्न उत्पादन में बढ़ोतरी हासिल करना रहा, उसमें पारिस्थितिकी तंत्र (इकोसिस्टम) के स्वरूप को ध्यान में नहीं रखा गया।"

जिन फसलों के भीतर जैव-प्रौद्योगिकी की तकनीक से एक या अधिक जीन प्रविष्ट कराए जाते हैं, उन्हें जीन संवर्धित फसल या जी.एम. (जेनेटिकली मॉडीफाइड) फसल कहा जाता है। रेनबो पपीता, बी.टी. कपास, गोल्डन राइस आदि जी.एम. फसलों के उदाहरण हैं। जी.एम. फसलों के लाभ-हानि का मुद्दा भी हरित क्रांति की तरह बहुत विवादास्पद है, जिसके बारे में यहाँ बताया गया है।

कृषि की दशा और दिशा के संदर्भ में लेखिका के जो भी विचार हैं, वे सुलझे हुए हैं। पुस्तक की भाषा प्रौढ़, प्रांजल, सहज प्रवाहमान और रोचक है। पुस्तक के अंत में दी गई संदर्भ सूची और अनुशंसित सामग्री (वेबसाइट, फिल्मों और पुस्तकों तथा लिंक के नाम) कृषि के इतिहास की ज्यादा जानकारी चाहने वालों के लिए उपयोगी हैं।

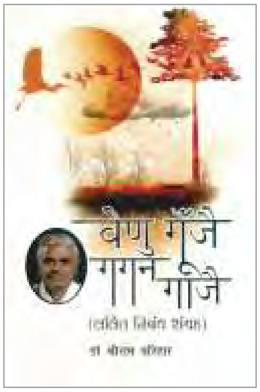

समीक्षक : **जनार्दन मिश्र**

निबंधकार : **डॉ. श्रीराम परिहार**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 198

मूल्य : रु. 220/-

वेणु गूँजै गगन गाजै

(ललित निबंध-संग्रह)

ललित निबंध विधा की उपस्थिति का आभास आधुनिक काल और गद्य विधा के आरंभ के साथ ही मिलने लगता है, पर एक व्यवस्थित और महत्वपूर्ण विधा के रूप में इसकी पहचान पहले आचार्य हजारी प्रसाद के निबंधों में दिखाई पड़ती है। 'अशोक के फूल', 'कुटज' और 'कल्पलता' संकलनों के निबंध पहले-पहल इस विधा के प्रतिदर्श बने। अतः उनके ये निबंध ही इस विधा के वास्तविक प्रस्थान बने हैं। आगे चलकर कुबेरनाथ राय, विद्यानिवास मिश्र, विवेकी राय, श्रीराम परिहार आदि ने इसे और समृद्ध किया।

अनेक पुस्तकों के लेखक एवं विविध संस्थाओं से सम्मानित, पुरस्कृत डॉ. श्रीराम परिहार की पुस्तक 'वेणु गूँजै गगन गाजै' में कुल 24 ललित निबंध संगृहीत हैं।

इस संग्रह का पहला शीर्षक है, 'लालित्य की संस्कृति'। इस कृति के निबंधकार का कथन है कि कला का जो दाय है, उसे भारतवर्ष ने बहुत पहले समझ लिया है। भारतीय दृष्टि में यह जो सृष्टि है, कोई दग्गड़ पत्थर मात्र से बनी संस्कृति सृष्टि नहीं है!... यह सृष्टि ईश्वर रूपी रचनाकार की अनुपम कृति है। ईश्वर रूपी कवि की सुंदर कविता है।

ईश्वर की सुंदर सृष्टि रचना में मनुष्य सुंदरतम् कृति है। समस्त सृष्टि में जो प्राण तत्व है, वह ऊर्जा है। प्राण नहीं मानें, तो ऊर्जा कह लें। सृष्टि का जो रूप आँखों से दिखाई देता है, उसके परे भी कोई अरूप है। उसे आत्मशक्ति या नैसर्गिक प्रतिभा के द्वारा ही देख सकते हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ—हम-आपको शेष संसार से जोड़ती हैं। वाणी हमारी अनुपम उपलब्धि है। 'ऊँ' का उच्चारण बिना नाभि की सहायता से नहीं कर सकते। ध्वन्यात्मकता कलाकार को जब पकड़ में आती है, तब ललित का सर्जन होता है। प्रकृति द्वारा सर्जित वस्तुओं का सौंदर्य, सौंदर्य है और सौंदर्य से अभिप्रेरित कृतियाँ जब मनुष्य निर्मित करता है, तो वे 'ललित' कहलाती हैं। कला समय का अतिक्रमण करती है। यात्राएँ सबसे ज्यादा लालित्य का बोध कराती हैं। इस निबंध को ध्यान से पढ़ने वाला बौद्धिक स्तर का पाठक 'लालित्य की संस्कृति' को अच्छी तरह से समझ सकता है।

'जग में अमर जोगी भरथरी (भर्तृहरी)' शीर्षक के अंतर्गत निबंधकार ने राजा भरथरी (भर्तृहरी) को ललित निबंध के माध्यम से सिद्ध किया है कि राजा भरथरी (भर्तृहरी) अमर नहीं है। जोगी भर्तृहरी अमर हैं।

भरथरी की कथा का निमाड़ी लोकनाट्य एवं कलाओं में वही स्थान है, जो राजा हरिश्चंद्र, राजा गोपीचंद, राजा मोरध्वज, राजा नल की कथा में है। सैकड़ों राजाओं में से भरथरी जैसे कुछ एक राजाओं को त्याग योग के साधक रूप में भारतवर्ष का गौरव गान करते हुए पाया गया है। लोक ने समवेत स्वर से गाया—'कलू म अमर राजा भरथरी' भरथरी की कथा जिंदगी पर अमिट छाप छोड़ती है। लोकमानस में भरथरी (भर्तृहरी) की नीति, शृंगार और वैराग्य में से सर्वाधिक प्रभाव वैराग्य का ही है। भरथरी की कथा में से भारतीय लोक ने जिन विश्वासों को ग्रहण किया है, उनमें सर्वाधिक प्रभावी है—पुनर्जन्म में विश्वास। भोग की बिखरी संपदा के बीच में जो जोगी बनकर जीता है, वह श्रेष्ठ है। भारतीय लोकमानस में कहने से अधिक महत्वपूर्ण है करना। पूरा कर्म आधारित भरोसे का संसार है लोक के पास। वह अनुभव की बोली बोलता है। लोक अधिकतर प्रतीकों से बात करता है।

'हिंदी भाषा और राष्ट्रीय अस्मिता में डॉ. परिहार ने रेखांकित किया है कि भाषा संस्कृति की धारक और संवाहक होती है। भाषा का प्रश्न देश की अस्मिता से जुड़ा हुआ है। उनका मानना है कि देश के कुछ राजनेताओं के साथ-साथ अपने को एलिट घोषित करने वालों के दुश्चक्र के कारण आज तक हिंदी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकी।'

सन् 1917 में महात्मा गांधी ने गुजरात शिक्षा सम्मेलन के सभापति पद से 'हिंदी' के विषय में जो कहा था, उसे भी दरकिनार कर दिया गया। संविधान में हिंदी भाषा को लेकर जो लिखा गया, उसे भी नकार दिया गया यानी हमारे सामने जो तीन आयाम आदर्श रूप में थे—'अनिवार्य' रूप में संस्कृति, शब्द रूप में संविधान और महामानव रूप में महात्मा गांधी, उन तीनों के साथ-साथ विभिन्न भाषाओं के विद्वानों, चिंतकों के कथनों की भी उपेक्षा की गई।'

'वेणु गूँजे गगन गाजै, सबद अनाहद बोले' शीर्षक के अंतर्गत डॉ. परिहार सोदाहरण सिद्ध करते हैं कि जिस आधार पर साहित्य एवं इतिहास के विद्वानों ने भक्ति काल के कवियों की दो कोटि बना दी, उचित नहीं है। और बहुत कुछ इस शीर्षक लेख में जानने-समझने को मिलेगा। इस संग्रह में संगृहीत ललित निबंधों में लोक जीवन भारतीय दर्शन के अद्‌भुत सिद्धांत को प्रतिपादित किया गया है। लयात्मक ललित गद्य विधा को जिस तरह से निबंधकार ने अपना रचना संसार बनाया है, स्वतः पूर्ववत स्वनाम धन्य ललित निबंधकार हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र आदि की याद आ जाती है।

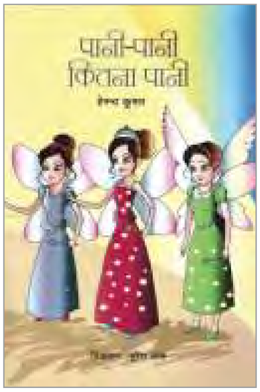

समीक्षक : **अनिता रश्मि**

लेखक : **हेमन्त कुमार**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 64

मूल्य : रु. 90/-

पानी-पानी कितना पानी

जब आप पौधों की जड़ों को सींचते हैं, तो उत्तम पत्तियाँ, फूल-फल पाने की आशा रखते हैं और यह आशा पूरी भी होती है। हेमन्त कुमार ने इसी तरह कोंपलों पर ध्यान केंद्रित कर खूबसूरत नाट्य पुस्तक 'पानी-पानी कितना पानी' की रचना की है। इसमें विविध विषयों पर आधारित चार नाटक हैं। ये नाटक कोंपलों अर्थात बच्चों-किशोरों को ध्यान में रखकर रचे गए हैं।

जैसा कि शीर्षक से ही विदित हो रहा है, यह बाल नाटक पानी, उसकी कमी, उसकी जरूरत और पानी बचाने की आवश्यकता सह कवायद को बहुत सुंदर ढंग से प्रस्तुत करता है। आज बहुत जरूरी हो गया है कि हम बचपन को ही जल संरक्षण की आवश्यकता समझाएँ, जल की कीमत भी। यह नाटक इस मायने में एक सफल रचना मानी जाएगी। सूत्रधार नट-नटी के माध्यम से सहज तरीके से बच्चों को पानी बचाने की शिक्षा-समझ परोस देता है यह नाटक।

नटी प्यास से तड़प रही है। अतः पानी की तलाश में भटकती वह बच्चों को आज नाटक भी दिखा नहीं पा रही है। सूखते गले से बेबस नटी सूखे बरतन-भाड़े को खँगालती है। वह बस पानी के गाने गाती है।

उसका गाना बहुत कुछ कह जाता है—

हरा समंदर गोपी चंदर
बोल मछली कितना पानी...

पानी की किल्लत झेलते इस त्रासद समय में इस नाटक में लाइन लगकर पानी भरने, पानी को बेवजह बरबाद करने, आम आदमी की लापरवाही के माध्यम से बहते पानी पर कैसे रोक लगाई जाए, आदि को बहुत रोचक ढंग से समझाया गया है। एक ही मंच पर विभिन्न क्रियाकलापों से पानी बरबाद करते लोगों को सहज ढंग से समझा दिया गया है कि आखिर बचत कैसे करें?

दूसरा नाटक 'चिड़ियों का अनशन' भी पर्यावरण को समर्पित है। इस नाटक में वृक्षों की उपयोगिता की बात उठाई गई है। एकदम सरल-सहज भाषा में जंगल में चिड़ियाँ, गौरैया, नीलकंठ, कोयल आदि पक्षियों के माध्यम से जंगल में पेड़ों की कटाई से पंछियों के छिन जाते ठिकानों की बात कही गई है। कटते पेड़ों के कारण पक्षीगण की मधुर चहचहाहट, घटते विहंग की तकलीफदेह अभिव्यक्ति।

ठेकेदार और उसकी पुत्री शांति के सामने पक्षियों का धरना गांधीजी के शांतिपूर्ण असहयोग आंदोलन की याद ही नहीं दिलाता, बारंबार बापू का जिक्र बच्चों में शांतिपूर्ण विरोध की जमीन भी तैयार करता है। महात्मा गांधी के बारंबार जिक्र और प्रतिरोध के स्वर से एक सकारात्मक वातावरण का निर्माण किया गया है।

बचपन को उन जीवन मूल्यों से जोड़ने में भी अहम भूमिका निभाता है 'चिड़ियों का अनशन'...। गाछ-वृक्षों पर कुल्हाड़ी चलवाने वाले ठेकेदार का मन भी बदल देता है। ठेकेदार के घर के सामने धरने पर बैठे पक्षी दाना चुगना छोड़ देते हैं, गाना भी। और इस तरह ठेकेदार को वे सब एहसास कराते हैं कि घटते पक्षियों और उनके मधुर गान की बड़ी वजह उनके बसेरे वृक्षों की कटाई है।

तीसरा नाटक अलग है। तीसरे नाटक में न नट है, न नटी। सूत्रधार की आवश्यकता थी भी नहीं। 'नया तमाशा नई कहानी' में भी एक बेहद जरूरी, प्रासंगिक विषय को उठाया गया है। मंद बुद्धि या मानसिक रूप से दिव्यांग बच्चों-बड़ों के प्रति हमारा रवैया कैसा होता है, यह किसी से छिपा नहीं है। परिजन भी मंद बुद्धि बच्चों को पागल कहते नहीं थकते। हर मोड़ पर मजाक, हर मोड़ पर कमतरी का एहसास, हर मोड़ पर असहयोग नजर आता है।

ऐसे में यह नाटक गंभीर सवाल उठाता है। केवल सवाल ही नहीं उठाता, समाधान भी प्रस्तुत करता है। इसमें हैं—बच्चों के माँ-बापू, विद्यालय के शिक्षक, साथी छात्र-छात्राएँ, खेल का मैदान और मंद बुद्धि बालकों के साथ किए जाते व्यवहार की मार्मिक झलक, स्कूल के मिड डे मील की सच्चाई।

सबसे लंबे नाटक 'नया तमाशा नई कहानी' का ग्रामीण परिवेश और पात्रों की बोली की मिठास विषयानुकूल है। प्रशंसनीय है। रचना से पाठकों...खासकर दर्शकों का सहज संबंध जोड़ने वाला है।

चौथा नाटक है—'जैसी करनी, वैसी भरनी'। इसमें नट-नटी, जंगल के राजा शेर और अन्य जानवरों को शामिल कर, जंगल में पानी की किल्लत और उसके समाधान की बात की गई है। सभी जानवर मिलकर कुआँ खोदने लगते हैं, लेकिन दुष्ट प्रवृत्ति का भेड़िया रात के अँधियारे में गड्ढे को मिट्टी से भर देता है। सभी

उसे पकड़कर राजा के पास ले जाते हैं। राजा शेर उसे दंडित करता है और जंगल के बाहर निकलवा देता है।

सहजता से मंचन किए जाने योग्य इस नाटक में भी नट-नटी के गाने, जानवरों के गाने के सहारे आपसी सहयोग की महत्ता पर भी बल दिया गया है। साथ ही सुकर्म करने और तकलीफों-अभावों से मिल-जुलकर लड़ने के लिए प्रेरित किया गया है। देखें—

एक अकेला यदि थक जाए
सब मिल उसका काम करें।
कठिनाई यदि आ जाए तो
सब मिल उसको दूर करें।

सहकारिता की भावना विकसित करने की कोशिश सराहनीय है। स्पष्ट संदेश देती उत्तम रचना। छात्रगण भी आसानी से मंचित कर सकते हैं।

बच्चों की पुस्तकों में चित्र होने से वे आसानी से बात, समस्या, समाधान को ग्रहण कर पाते हैं। इसका आवरण चित्र तीन खूबसूरत परियों से छात्रों को लुभाएगा तो अंदर हर चित्र नाटक की कथावस्तु के साथ कदमताल करता हुआ प्रेरणा देगा। अपने संदेश में स्पष्ट 'पानी-पानी कितना पानी' का स्वागत होना चाहिए। ऐसी वैश्विक महत्व वाली पुस्तक, जो हर बच्चे, किशोर, युवा के हाथों में होनी चाहिए। साथ ही, देश-विदेश के बाल पुस्तकालयों, शैक्षणिक संस्थानों में भी शामिल होनी चाहिए।

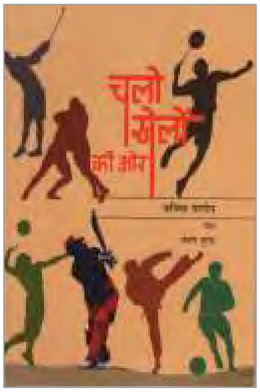

समीक्षक : **अनिता रश्मि**

लेखक : **कनिष्क पांडेय**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 112

मूल्य : रु. 130/-

चलो खेलों की ओर

अभी कुछेक दशक पहले की बात थी, हर घर में 'पढ़ोगे-लिखोगे, बनोगे नवाब; खेलोगे-कूदोगे, होओगे खराब' की मानसिकता आम थी। लेकिन आज खेलों के महत्व को देखते हुए यह कथन तिरोहित हो गया है। अब खेल-कूद को भी भरपूर प्रोत्साहन मिल रहा है, खिलाड़ियों को भी। अब खेलों से आर्थिक स्थिति सुधरने के कारण घर-परिवार, मुहल्ले-बिरादरी की मानसिकता बदल गई है, यह तो सब जानते हैं। ऐसे समय में खेल पर विस्तार से निगाह डालने वाली उपयोगी पुस्तक है—'चलो खेलों की ओर'। जन-जन तक खेल को पहुँचाने के लिए प्रयासरत खेल-शोधार्थी, प्रमुख लेखक कनिष्क पांडेय ने इसे लिखा है। इससे पूर्व खेल को समर्पित उनकी दोनों पुस्तकों को पर्याप्त चर्चा मिल चुकी है।

इस पुस्तक में उन्होंने बहुत ही बारीकी से क्रीड़ा की महत्ता समझाने की कोशिश की है। उनका साथ दिया है चित्रकार अरूप गुप्ता ने। खेल के विभिन्न भागों, आयोजनों, तरीकों, खिलाड़ी-निर्माण संबंधी बातों के साथ तमाम जानकारियाँ बेहद विस्तार से प्रस्तुत कर लोगों को प्रेरणा की डोर थमाने की कोशिश की गई है।

आज मोबाइल, कंप्यूटर, टीवी की दुनिया में खोए हुए बच्चों को खेल की रोचक, उपयोगी दुनिया में लाने का प्रयास आज की जरूरत भी है। खेलों की दुनिया में ले जाने वाली यह पुस्तक छह उल्लेखनीय खंडों में समेटी गई है।

'खेलों का महत्व' में हमारी शिक्षा व्यवस्था में खेलों के प्रवेश को उचित ठहराते हुए संक्षेप में खेल के द्वारा व्यक्तिगत विकास से लेकर राष्ट्र निर्माण में इसकी महती भूमिका की चर्चा की गई है। मानसिक-शारीरिक विकास में खेल के योगदान को रेखांकित किया गया है।

'खेलों के प्रेरक प्रसंग' में एक लंबी कथा परोसकर बहुत सुंदर ढंग से यह बताने की कोशिश की गई है कि खेल को आंदोलन का रूप देकर, खेल से प्रत्येक व्यक्ति पूरे मन से जुड़कर समाज और देश की भी सेवा कर सकता है। जिस तरह से पठनीय कथा ने खेल की दुनिया से परिचय कराते हुए प्रेरणा दी है, यह सुखद है।

खेल की आवश्यकता आखिर क्यों है, इसे खंड दो में लेखक ने निहायत ही प्यार से समझाने की कोशिश की है। खेल और व्यायाम शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य के लिए समान रूप से कारगर होते हैं। फिर भी कुछ अंतर है। कसरत-व्यायाम से मात्र व्यक्ति विशेष का विकास होता है, लेकिन खेल में दलगत भावना सर्वोपरि रहने के कारण इससे सामूहिक विकास होता है।

इस खंड में जीवन मूल्य, खेल मूल्य एवं अन्य मानवोचित गुणों के विकास की संभावना आदि पर सार्थक कहन है।

'खेल और मेरा जीवन' लेखक के व्यक्तिगत अनुभव, इच्छा, खेल से मिले लाभ, साहस, ईमानदारी, अनुशासन, जीवनानुभव, सफलता आदि का वर्णन किया है। साथ ही, खेल के फायदे की बहुत सुंदर व्याख्या की है। छोटी उम्र से ही बैडमिंटन से जुड़ना किस तरह उनके व्यक्तिगत प्रगति में, मानसिक विकास में सहायक साबित हुआ, इसे विस्तारपूर्वक बताया है।

खेल मूल्यों के पालन से किन अतिरिक्त गुणों की वृद्धि होती है, इस अध्याय में देखा जा सकता है। लेखक ने खेल के फायदे भी गिनाए हैं कि इससे न केवल त्वरित निर्णय लेने की क्षमता बढ़ती है, बल्कि जुझारूपन, अनुशासन, ईमानदारी, सहिष्णुता, धैर्य, सम्मान की भावना, टीम भावना, समभाव, भाईचारा, सकारात्मकता आदि भी सीखते हैं।

छोटे-छोटे शीर्षकों, अनुच्छेदों में बाँटकर समझाने का तरीका बेहतर परिणाम लाने में अहम भूमिका निभाएगा। बहुत बारीकी से हर बात को रखकर खेल और शिक्षा के एकीकरण, छुटपन से ही खिलाड़ियों की सहभागिता, प्रशिक्षण देकर उनकी प्रतिभा को निखारना, प्रतिभाशाली खिलाड़ियों के संवर्धन, उचित चिकित्सा, बेहतरीन खिलाड़ियों को विदेश में प्रशिक्षण जैसी तमाम बातों पर सहज ढंग से उपयोगी बातें रखी गई हैं। आज खेल से भी नवाबी संभव है, यह संदेश मुखर। खेल अब मात्र मनोरंजन का साधन नहीं, अब यह यश के साथ धन की भी वर्षा करता है।

आज 'अवसाद' नामक गंभीर बीमारी की चपेट में पूरा विश्व है। आधुनिक जीवन-शैली और खेल आदि से दूरी भी अवसाद का एक बड़ा कारण माना जा रहा है। केवल व्यायाम से जुड़े व्यक्ति भी खेल के प्रति अरुचि के कारण अवसाद से घिर जाते हैं। खेल ऐसे व्यक्तित्व में भी बदलाव लाने की क्षमता रखता है, जो जीवन में हार चुके हैं।

लेखक का स्पष्ट आकलन है कि जीवन के कठिन क्षणों, संघर्षशील पलों में सफलतापूर्वक बाहर आने का रास्ता खेल ही दिखलाता है। अनेक सफल खिलाड़ियों के उदाहरण सामने हैं।

खेल के प्रति लेखक का समर्पण एक उम्दा पुस्तक के रूप में ढल गया है। यह खेलों के प्रति लोगों को जागरूक करने में सहायक साबित होगी। मोबाइल, टीवी, इंटरनेट की दुनिया से परे एक ऊर्जावान संसार में ले जाने के लिए प्रेरित करेगी। जन-जन तक खेल को पहुँचाने के लिए प्रयासरत लेखक का यह योगदान भी रेखांकित करने योग्य है।

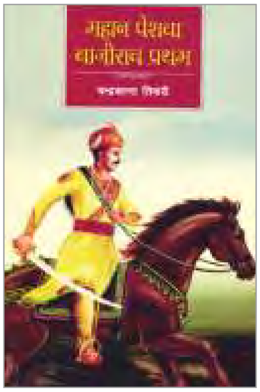

समीक्षक : **धर्मेंद्र पंत**
लेखक : **चन्द्रकान्त तिवारी**
प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070
पृष्ठ : 336
मूल्य : रु. 375/-

महान पेशवा बाजीराव प्रथम

भारत में बहुत से ऐसे वीर योद्धा हुए हैं जिनके साथ इतिहासकारों ने कभी उचित न्याय नहीं किया और इसलिए वे हमेशा गुमनाम रहे। ऐसे वीर योद्धाओं की सूची लंबी हो सकती है, लेकिन इनमें कुछ ऐसे योद्धा भी शामिल हैं जो वास्तव में इतिहास में विशेष स्थान पाने की योग्यता रखते थे। ऐसे ही एक महान योद्धा थे पेशवा बाजीराव प्रथम जिन्हें छत्रपति शिवाजी महाराज के बाद मराठा साम्राज्य का सबसे कुशल सेनानायक माना जाता है। आखिर वह ऐसे हिंदू महानायक थे जो हमेशा अपराजित रहे और जिन्होंने लगभग 20 साल तक मुगलों और अंग्रेजों को छठी का दूध याद दिलाया था।

ऐसे महान सेनानियों का इतिहास की पुस्तकों ही नहीं, पाठ्यपुस्तकों में भी विवरण होना चाहिए था क्योंकि उनका जीवन अनुकरणीय है। भारतीयता के आदर्श इस महानायक के जीवन को राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने अब पुस्तक का रूप दिया है। लेखक ने लंबे शोध के बाद यह पुस्तक तैयार की है और प्रामाणिक तथ्यों के साथ सिलसिलेवार प्रकरणों को सामने रखा है।

महान छत्रपति शिवाजी ने जिस पेशवा अर्थात पंत प्रधान पद की शुरुआत की थी, बाजीराव प्रथम ने उसके साथ पूरा न्याय किया था। उनके पिता बालाजी विश्वनाथ भी पेशवा थे और उनके निधन के बाद जब शाहूजी महाराज ने 20 साल के बाजीराव को पेशवा नियुक्त किया तो यह पद भी वंश परंपरा से जुड़ गया था। बाजीराव को 17 अप्रैल, 1720 को पेशवा नियुक्त किया गया था। केवल 40 साल की उम्र में 28 अप्रैल, 1740 को उनका निधन हो गया था, लेकिन उन्होंने इन 20 वर्षों में भारत के कोने-कोने में अपने नाम का डंका बजा दिया था।

ऐसे महान योद्धा की भारतीय इतिहास लंबे समय तक उपेक्षा करता रहा। उन पर एक फिल्म भी बनी थी 'बाजीराव मस्तानी', लेकिन उसमें भी उनके प्रणय संबंधों पर मुख्य ध्यान नहीं दिया गया था। उनके पराक्रम, कौशल, राजनिष्ठा, साहस और धर्मपरायणता को इसमें पूरी तरह से नजरअंदाज किया गया था। ऐसे में कहा जा सकता है कि डॉ. चंद्रकांत तिवारी ने अपनी पुस्तक में बाजीराम प्रथम से जुड़े हर पहलू पर गौर करके इस वीर सेनानायक के साथ पूरा न्याय किया है और इसके साथ इतिहास को अपनी गलती सुधारने का मौका भी दिया है।

इस पुस्तक में हर अगले अध्याय में उनके जीवन से जुड़ी एक नई परत खुलती है। किस तरह से शाहूजी महाराज के महाराष्ट्र आगमन पर बालाजी विश्वनाथ को मान सम्मान मिला और फिर कैसी परिस्थितियों में बाजीराव प्रथम पेशवा बने। बाजीराव का अधिकतर जीवन मराठा साम्राज्य का विस्तार करने और विभिन्न युद्धों में व्यतीत हुआ, जिनमें उन्हें विजय मिली। इनमें निजाम से लेकर मालवा, बुंदेलखंड, कर्नाटक, गुजरात, राजस्थान, कोंकण आदि में उनकी सैन्य कुशलता और जीत का विस्तृत और रोचक वर्णन इस पुस्तक में पढ़ने को मिलेगा। बाजीराव का मस्तानी के प्रति प्रेम के कारणों का व्यावहारिक विश्लेषण भी इस पुस्तक में किया गया है। आखिर में लेखक ने बाजीराव की उपलब्धियों के साथ उनकी दुर्बलताओं के बारे में भी बताया है। स्वाभाविक है कि कोई भी व्यक्ति संपूर्ण नहीं होता और बाजीराव भी अपवाद नहीं थे।

पुस्तक में जिस तरह से बाजीराव प्रथम के प्रत्येक निर्णय, प्रत्येक युद्ध और प्रत्येक विजय का विस्तार से वर्णन किया गया है, उससे

स्पष्ट होता है कि लेखक ने इस पुस्तक को अंतिम रूप देने से पहले हर पहलू का सूक्ष्म अध्ययन किया है। इसलिए कहा जा सकता है कि यह पुस्तक गहन शोध का परिणाम है। इस तरह की पुस्तकें हमेशा पठनीय और संग्रहणीय होती हैं और 'महान पेशवा बाजीराव प्रथम' भी किसी शोधार्थी और इतिहास में रुचि रखने वाले व्यक्ति या विद्यार्थी को निराश नहीं करेगी। बाजीराव एक वीर सैनिक थे और उनकी मौत भी एक सैनिक की तरह सैन्य शिविर में हुई। इतिहास के गुमनाम पन्नों में सुप्तावस्था में पड़े बाजीराव प्रथम जैसे सेनानायकों और योद्धाओं को नया जीवन देने की आवश्यकता है और इस कड़ी में यह पुस्तक एक अमूल्य धरोहर है।

द लास्ट गर्ल

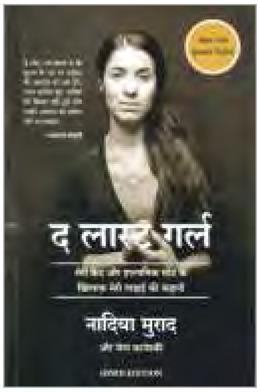

समीक्षक : **ब्रजेश राजपूत**

लेखिका : **नादिया मुराद और जेना क्राजेस्की**

अनुवाद : आशुतोष गर्ग

प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृष्ठ : 264

मूल्य : रु. 299/-

बहुत कम पुस्तकें ऐसी होती हैं जो पढ़कर खत्म करने के बाद भी आपका पीछा करती हैं। 'द लास्ट गर्ल' ऐसी ही पुस्तक है जो नादिया मुराद के जीवन की कहानी है। आप पूछोगे नादिया मुराद कौन हैं? तो याद दिलाने पर याद आ जाएगा कि 2018 में नोबेल शांति पुरस्कार पाने वाली यजीदी लड़की जो आतंकी संगठन आई.एस.आई.एस. के चंगुल से बचकर भागी और उनके आतंक की कहानी पूरी दुनिया को बिना डरे सुनाई। वही आई.एस.आई.एस. जो अपने दुश्मनों के सिर वीडियो कैमरों के सामने रेतकर आतंक फैलाते थे और महिलाओं एवं लड़कियों को गुलाम बनाकर यौन गुलामी सबाया करवाते थे। आई.एस.आई.एस. ने उत्तरी इराक के जिन इलाकों में 2014 में कब्जा कर नरसंहार किया तो उन्हीं में से एक गाँव नादिया का भी था। जहाँ यजीदी समुदाय के लोग अपनी गरीब जिंदगी में खुशहाली के साथ रहते थे। इन यजीदियों के पास अपने देवता की धार्मिक पुस्तक नहीं है। ये प्रकृति प्रेमी हैं इसलिए इस इलाके में रहने वाले कट्टर मुस्लिम समुदाय के लोग इनको नास्तिक मानते हैं और मन-ही-मन में दुश्मनी पाल कर इस समुदाय के लोगों को खत्म करना चाहते हैं।

इराक में सद्दाम हुसैन के खात्मे के बाद जो राजनीतिक अस्थिरता इस देश में आई, उसने कैसी तबाही और अराजकता इस इलाके में फैलाई है। इस पुस्तक में उसका भी जमीनी वर्णन है। उत्तरी इराक के सिंजर जिले के कोचो गाँव में अपने भरे परिवार के साथ रहती थी नादिया। और एक दिन उसके गाँव में आई.एस.आई.एस. के आतंकियों ने अचानक कब्जा कर लिया। गाँव के कुछ लोग पास के ऊँचे पहाड़ पर जान बचाने के लिए चढ़ गए। मगर जो बचे, उनमें से महिलाओं और लड़कियों को स्कूल में बंदी बना लिया और करीब पाँच सौ पुरुषों और दस साल से बड़े लड़कों को पहले से बने गड्ढे में उतारकर गोलियों से भून डाला। इस नरसंहार में नादिया के छह भाई और अनेक संबंधी मारे गए। मगर इसके बाद शुरू होता है नादिया की जिंदगी का दर्दनाक पन्ना जिसे पढ़कर और सुनकर रूह काँप जाती है।

कोचो गाँव की लड़कियों और महिलाओं को बसों में भरकर आई.एस.आई.एस. आतंकी अपने कब्जे वाले इलाके मोजुल में ले जाते हैं। लड़कियों और महिलाओं पर अत्याचार का सिलसिला बस में बैठने से ही शुरू हो जाता है जो विरोध या प्रतिरोध करने पर और बढ़ता है। इसके बाद इन सबको सबाया बनाया जाता है यानी कि आई.एस.आई.एस. के आतंकियों की यौन भूख शांत करने के लिए गुलाम औरतें जिनको कोई भी आतंकी एक-दूसरे को बेच सकता है। कितने भी दिन अपने साथ रख सकता है और कितने भी-कैसे भी जुल्म ढा सकता है। आई.एस.आई.एस. की गंदी विचारधारा के मुताबिक यजीदी बाकी के ईसाई शिया और सुन्नी संप्रदाय से अलग हैं इसलिए इनको धरती से खत्म करना और इनकी औरतों को प्रार्थना कराकर उनका धर्म बदलकर उनसे दुराचार करना गलत नहीं है। यौन गुलाम बनाई गईं ये औरतें आतंकियों के लिए अपने फौज में भर्ती होने वाले युवाओं को लुभाने का एक तरीका भी है जिससे ज्यादा-से-ज्यादा नौजवान उनसे जुड़ें जिसके बदले में उनको भरे बाजार में और कभी-कभी तो फेसबुक के पेज पर दस से बीस डॉलर में बिकने वाली सबाया यानी कि सुंदर महिला यौन गुलाम मिलें। जिसे वो अपनी मर्जी से रखकर ऐश करने और कभी-कभी तो मार डालने तक के लिए स्वतंत्र थे।

नादिया के साथ भी कई दिनों तक यही कहानी दोहराई जाती रही। एक आतंकी से दूसरे आतंकी के पास उसे बेचा जाता रहा। लगातार दुराचार और अत्याचार होते रहने के बाद जब नादिया ने एक बार उन जालिमों के चंगुल से बचकर भागना चाहा तो उसे पकड़ लिया गया और फिर उसे बेइंतहा ऐसे जुल्म झेलने पड़े जिनके बारे में पढ़कर रूह काँप जाती है।

नादिया ने अपनी कहानी के साथ-साथ उसे मिलने वाली दूसरी सबाया यानी कि यौन गुलामों की दास्ताँ भी सुनाई है। सभी के दुख-दर्द एक से बढ़कर एक थे। सभी धर्म के नाम पर आतंक फैलाने वाले इस अत्याचारी संगठनों की गुलाम बनकर जिंदगी काट रही थीं। जिनकी जिंदगी में सिवाय दुराचार के और कुछ नहीं बचा था। मगर आई.एस.आई.एस. के अत्याचार की कहानी नादिया को जमाने को

सुनानी थी तो वो एक दिन दोबारा भागती है आतंक के अड्डे से। मगर आतंकियों के राज्य से बाहर निकलना आसान नहीं था। कदम-कदम पर चौकसी और सख्ती के बीच कैसे नादिया बाहर आती है, ये रोंगटे खड़े कर देने वाली कहानी है, जिसे पन्ने-दर-पन्ने साँस रोककर पढ़ना पड़ता है। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते कई बार दिल की धड़कन बढ़ जाती है। यह अनुवाद का कमाल है जो आशुतोष गर्ग ने किया है। ऐसा लगता है कि हम आई.एस.आई.एस. के इलाके में ही घूम रहे हैं और कभी भी नादिया के साथ हमारा सिर भी कलम कर दिया जाएगा।

नादिया ने बाहर आकर यजीदियों के संघर्ष और उन पर होने वाले अत्याचारों से दुनिया को अवगत कराया है। उसका अपनी कौम के साथियों के लिए संघर्ष जारी है। नादिया को नोबेल शांति पुरस्कार के अलावा मानवाधिकार संबंधी सारे अंतरराष्ट्रीय सम्मान मिले हैं।

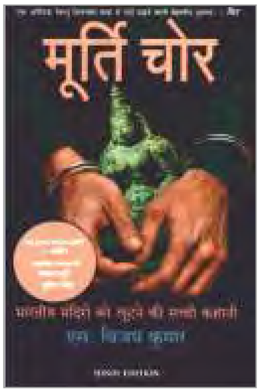

समीक्षक : **अनिता रश्मि**

लेखक : **एस. विजय कुमार**

अनुवाद : महेन्द्र नारायण सिंह यादव

प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृष्ठ : 164

मूल्य : रु. 299/-

मूर्ति चोर

प्राचीन काल से ही हमारे छोटे-बड़े देवालयों में एक से बढ़कर एक प्रतिमाएँ उपलब्ध रही हैं। ऐसी आकर्षक प्रतिमाएँ कि दर्शक मंत्रमुग्ध रह जाएँ। संग्रहालयों, देव स्थानों में उपलब्ध इन छोटी, बड़ी, मंझोली कलात्मक मूर्तियों ने दर्शकों को ही तृप्त नहीं किया, अनेक धन लोलुपता के शिकार लोगों को चोरी के लिए भी उकसाया है।

भारत में विभिन्न सभ्यता और विभिन्न शासकों के राज के विकास के फलस्वरूप विभिन्न मंदिरों का निर्माण यहाँ किया गया और उतनी ही विविधतावाली खूबसूरत, विशाल मूर्तियों की स्थापना की गई। भारतीय प्रस्तर-धातु-मृत्तिका से निर्मित कलाकृतियों, भित्तिचित्रों, वास्तुशिल्प, कलाकारी के सब दीवाने थे, हैं और रहेंगे भी। ऐसे में देश-विदेश के मूर्ति चोरों की बन आई। अप्रवासी भारतीयों ने भी इस चोरी को परवान चढ़ाया। पुस्तक 'मूर्ति चोर' में उन्हीं मूर्तियों के खोने-पाने की कथा बड़े विस्तार से लिखी गई है। लेखक एस. विजय कुमार ने भारतीय मंदिरों, संग्रहालयों को लूटने की सच्ची कहानी बयान की है।

इसमें गहन अनुसंधान कर चोल युग के काँसे की देवी-देवता की मूर्तियों सहित अनेक दुर्लभ कलाकृतियों की बरामदगी की सच्ची घटनाओं को शामिल किया गया है। उन कलात्मक प्रतिमाओं को चुराना भयंकर अपराध है। ऐसे ही अंतरराष्ट्रीय चोरों के बड़े गिरोह का भंडाफोड़ करने की स्थितियों पर विभिन्न खंडों में बँटी यह एक सच्ची पुस्तक है।

प्राक्कथन में 11वीं सदी में तमिलनाडु के अरियालुर के पास एक छोटे से गाँव में मूर्ति निर्माण की स्थितियों के वर्णन संग मंत्रोच्चारण और विश्वकर्मा की आराधना की प्रस्तुति है—शिल्पकार मंत्रोच्चारण करते हुए जनेऊ धारण करता है। फिर अपने प्रथम पूर्वज सृष्टि के रचयिता विश्वकर्मा की शक्तियों का आह्वान करता है।... यहीं से पुस्तक की रोचकता का परिचय मिलना शुरू हो जाता है। मूर्ति निर्माण की कथा इतने सुंदर ढंग से प्रस्तुत की गई है कि मनोरम उपन्यास-सा आनंद देती है।

देश के अलग-अलग हिस्सों से उन अद्भुत प्रतिमाओं की चोरी, चोरी के दौरान मूर्तियों के खंडित होने, उन्हें विदेशों में बेचने संबंधी तमाम जानकारियाँ पुस्तक में दी गई हैं। उन खंडों के शीर्षक से खुलता जाता है सारा रहस्य। हमारे बहुमूल्य प्राचीन धरोहरों पर लगी गिद्ध दृष्टि का पर्दाफाश होता है। लूट के तार भारत से होते हुए अमेरिका, इंग्लैंड, जापान, ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों तक विस्तृत थे।

चालाक चोरों ने हर संभव प्रयास कर दक्षिण के मंदिरों की मूर्तियों का सच छिपाने की कोशिश की। पर ई.डी., सी.बी.आई., इंटरपोल आदि के सामने उनकी एक न चली। लेखक एस. विजय कुमार और उनकी टीम के श्रमसाध्य प्रयास ने ऐसे अपराधियों को जेल की सलाखों के पीछे पहुँचाने में अहम भूमिका निभाई है।

चंद खंड शीर्षकों की बानगी—'सुभाष कपूर की आलीशान जिंदगी', 'सुतमल्ली और श्रीपुरंदन की लूट', 'इडी ने सँभाली कमान', 'आहत प्रेमिका का बदला', 'मूर्ति के नीचे अभिलेख और एक गुमनाम सुराग', 'अर्धनारीश्वर और नटराज', 'ऑपरेशन हिडन आइडल' आदि।

हमारी व्यवस्था की खामियों, महत्वहीन और कमजोर कानूनों के चलते ऐसे अपराधियों की सजा अवधि मनमर्जी से अधिक या कम कर देने से अपराधियों का मनोबल टूटने की बजाय बढ़ जाता है। इसे पुलिस के बड़े अधिकारी ने भाँप लिया था और ऐसे अपराधों की वजहों पर खुलकर अपने विचार रखे थे। उसे भी यहाँ उद्धृत किया गया है।

औपन्यासिक विस्तार और रूप-रंग की 'मूर्ति चोर' में अधिकारियों के अथक मेहनत की भी झलक मिलती है कि कैसे सी.बी.आई., इंटरपोल सहित अनेक एजेंसियों ने उन सब चोरों पर लगाम लगाई और उन्हें कटघरे तक पहुँचाकर ही दम लिया। जितना श्रमसाध्य, दुष्कर कार्य था, उतना ही रोचक वर्णन। आख्यान के अंदर आख्यान।

पुस्तक की शुरुआत पात्रों के परिचय से होती है। देश से विदेश तक फैले चोरों का संक्षिप्त परिचय अपराध जगत् के उन पात्रों तक ले

जाता है, जिसे जानना पुस्तक को समझने के लिए आवश्यक है। केवल चोरों से ही नहीं, उन साहसी किरदारों से भी मिलवाता है जिन्होंने उनकी करतूतों का भंडाफोड़ करने में अहम भूमिका निभाई। एक कर्मठ, ईमानदार, लगनशील, कर्तव्यनिष्ठ, दृढ़प्रतिज्ञ अधिकारी किस तरह अपने सतत प्रयास से अपराधी को उसके अंजाम तक पहुँचाते हैं, इसका परिचय भी मिलता है। साथ ही, इस तरह के अपराध और तस्करी में संलिप्त संग्रहालय के अधिकारियों, पुलिसकर्मियों, व्यवसायियों, चोरी में साथ देने वाले बड़े नामों की पोल खोल देती है।

लेखक एस. विजय कुमार सिंगापुर के निवासी हैं। वे फाइनेंस एवं शिपिंग एक्सपर्ट हैं। दक्षिण-पूर्वी एशिया में अग्रणी समुद्री परिवहन कंपनी के जनरल मैनेजर हैं। इन्होंने अपने ब्लॉग के जरिए कलाकृतियों की चोरी के मामलों की छानबीन शुरू कर दी और बाद में वे भारतीय, अमेरिकी कानूनी एजेंसियों से जुड़कर मामलों की तह तक पहुँचे। चोरी की मूर्तियों को भारत लाने में और अपराधियों की गिरफ्तारी में लेखक का सहयोग जाँच एजेंसियों को मिला। आँखों देखे, कानों सुने और महसूस किए गए उन्हीं स्रोतों को लेखक ने पुस्तक का लिबास पहनाया है। असाधारण कार्य करने वाले ऐसे व्यक्ति ने 'मूर्ति चोरी' की इस कहानी को लिखा है, जो सालों से स्वयं चोरों का पीछा करता रहा है। यह कथा इसीलिए और भी आश्चर्यजनक, रोमांचक, विश्वसनीय लगने लगती है।

हवा का इंतजाम

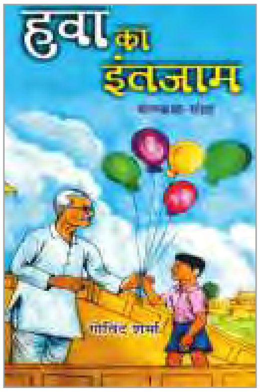

समीक्षक : **विजय कुमार 'शाश्वत'**
लेखक : **गोविन्द शर्मा**
प्रकाशक : साहित्यागार, जयपुर।
पृष्ठ : 80
मूल्य : रु. 200/-

बाल कहानियों में सिद्धहस्त गोविन्द शर्मा ने एक से बढ़कर एक कहानियाँ लिखीं। अब तक उनके दो व्यंग्य संग्रह, चार लघुकथा संग्रह, दो जीवनियाँ सहित 46 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनमें से 36 बाल साहित्य पर हैं। उनकी कई बाल कहानियाँ व एकांकी राजस्थान, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र के स्कूली पाठ्यक्रम में शामिल हैं। पुस्तक 'हवा का इंतजाम' भी बालकथा संग्रह है जिसमें 17 कहानियाँ संकलित हैं।

संग्रह की पहली कहानी 'हवा का इंतजाम' है जो पुस्तक का शीर्षक भी है। आज की भाग-दौड़ भरी दुनिया में जहाँ परिवार विखंडित हो रहे हैं। पिता-पुत्र, भाई-भाई में दूरी बन गई है, ऐसे में इस कहानी के माध्यम से दादा-पौत्र के बीच निश्छल प्रेम को बखूबी दर्शाया गया है। जहाँ दादा शहर में अपने बड़े बेटे के पास सुख-सुविधाओं भरे जीवन की ओर आकर्षित होकर कहते हैं कि गाँव में हवा नहीं है। इस पर पौत्र उन्हें गुब्बारे में हवा भर कर देता है और कहता है कि दादाजी आपको जब भी लगे कि हवा नहीं है, आप एक गुब्बारा खोलना और निकलने वाली हवा ले लेना। बच्चे के मासूमियत और दादा का स्नेह दोनों इस कहानी में स्पष्ट हैं। साथ ही, रिश्ते की प्रगाढ़ता भी दिखाई देती है।

'चूहागढ़ का चुनाव' कहानी मानव को मानवता का पाठ सिखाती है। यह कहानी एक अनाज गोदाम की है, जिसमें चूहे तर्क देते हैं कि जब हर जगह चुनाव हो रहे हैं, क्या देश, क्या प्रदेश, क्या शहर, क्या गाँव! इसलिए हमें भी चुनाव कराने चाहिए और अपना नेता चुन लेना चाहिए। चूहे चुनाव कराते हैं और उल्टा-पुल्टा नाम के दो चूहे चुनाव लड़ते हैं। उल्टा अपने घोषणापत्र में अनाज की बोरियों के न कुतरने, जमीन पर बिखरे अनाज को खाने और मनुष्यों के मित्रवत व्यवहार की पैरवी करता है। वहीं पुल्टा नई बोरियाँ कुतरने के पक्ष में है क्योंकि चूहे इनसान के द्वारा मार दिए जाते हैं या फिर पिंजड़े में बंद कर किसी निर्जन स्थान पर छोड़ दिए जाते हैं। लेकिन उल्टा का तर्क है कि यदि हम मनुष्य को नुकसान न पहुँचाएँ, उनका अनाज न बरबाद करें तो वे हमें क्यों मारेंगे? काफी दलीलों के बाद मतदान होता है और 100 में 90 चूहे उल्टा के पक्ष में मत देते हैं। इस पर पुल्टा उसे जीत की बधाई देने जाता है और कहता है कि तुम अपने घोषणा पत्र में इधर-उधर शौच न करने की बात को शामिल करो ताकि अनाज गंदा न हो। यह कहानी बताती है कि हम मनुष्य अपने स्वार्थ में इतना डूब गए हैं कि एक-दूसरे का नुकसान करने में तनिक भी नहीं हिचकते, लेकिन जीव-जंतु में भी शायद दूसरों के प्रति उदारता का भाव होता होगा।

'वनराज और गजराज' कहानी बाल पाठकों की दृष्टि से बहुत रोचक है। इसमें वनराज अर्थात शेर और गजराज अर्थात हाथी के मध्य राजा कहलाने की बात अनूठे ढंग से प्रस्तुत की गई है। 'कला की कद्र' कहानी शिक्षाप्रद है। यह कला के सम्मान को लेकर लिखी गई रोचक कथा है। 'चिंपू के सच्चे दोस्त' कहानी में तीन बिल्लियाँ सच्चे दोस्त की भूमिका का निर्वहन करती हैं जो सच बोलने की ओर इशारा करती हैं। जानवर भी समझदार होते हैं, इस बात की पुष्टि इस कहानी से होती है।

'हौसले की उड़ान' एक गरीब अनपढ़ ग्रामीण की कहानी है जो शिक्षा के मोल को समझते हुए विद्यालय में बिना मेहनताना के सेवा-सुश्रूषा करता है ताकि धन व सुविधा के अभाव में विद्यालय बंद न हो और स्कूल से पाँच कि.मी. दूर से विद्यार्थियों और राहगीरों को पानी लाकर पिलाता है। जैसे-जैसे कहानी संग्रह आगे बढ़ता है,

कहानियाँ रोचक और प्रेरणास्पद हो जाती हैं। बाल पाठक का मन नहीं उचटता। 'चिंपू बन गया', 'परीक्षा परी का उपहार', 'टॉय-टॉय फिश', 'बब्बूजी का मोबाइल', 'देश की सेवा', 'वह सच बोला', 'बुद्धि की तलाश' और 'जूते' आदि सभी कहानियाँ रोचकता लिए हुए हैं।

संग्रह की सबसे अंतिम कहानी है 'हाथी पर ऊँट'। वास्तव में यह अग्रिम पंक्ति की कहानी है। इस कहानी में हाथी और ऊँट सच्ची दोस्ती निभाते हैं और एक-दूसरे की जान बचाते हैं। यहाँ तक कि हाथी की जान बचाने के फेर में ऊँट मनुष्य द्वारा पकड़ लिया जाता है और घरेलू कार्य व खेती-बाड़ी में लगा दिया जाता है।

संग्रह की सभी कहानियाँ बालमन को अपनी ओर आकृष्ट करती हैं। रोचकता के साथ-साथ कुछ प्रेरणा, शिक्षा, ज्ञान के अंश मनमस्तिष्क पर अंकित करने में सक्षम हैं।

विश्व के 20 महान समाज-सुधारक

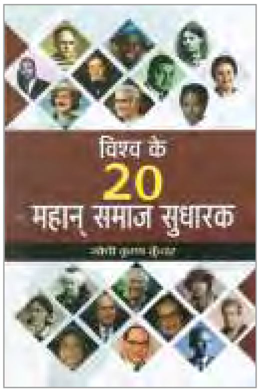

समीक्षक : **डॉ. लक्ष्मी नारायण मित्तल**

लेखक : **गोपी कृष्ण कुँवर**

प्रकाशक : ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 176

मूल्य : रु. 350/-

भारत की स्वतंत्रता से पूर्व ऐसी पुस्तकें बहुतायत से प्रकाशित होती रहती थीं जिसमें देश के प्राचीन, अर्वाचीन और आधुनिक नायकों का जीवन-चरित्र होता था जिसे पढ़कर देश के युवा प्रेरणा लेते थे। स्वतंत्रता के बाद यह क्रम कुछ थम-सा गया था, परंतु पिछले कुछ वर्षों में अनेक प्रकाशकों ने भारतीय नायकों के जीवन और कृतित्व को लेकर पुस्तकें छापी हैं।

गोपी कृष्ण कुँवर की यह पुस्तक इसी शृंखला की एक कड़ी है। इस पुस्तक में 20 भारतीय और विदेशी नायक-नायिकाओं का जीवन चरित्र है जो उनके कृतित्व और विश्व बंधुत्व के लिए किए गए कामों को उजागर करता है। इसमें विदेशी मार्टिन लूथर किंग, जैन एडमस राबर्ट ओवन आदि शामिल हैं। इसमें बांग्लादेश के मोहम्मद यूनुस भी शामिल हैं जिन्होंने भारतीय महाद्वीप में गरीब, अशक्त और साधनहीन महिलाओं के लिए माइक्रो क्रैडिट की शुरुआत की।

इस पुस्तक में उन लोगों को शामिल किया गया है जिनके प्रयासों से उनके देशों में आम जीवन में खुशहाली आई और जिन्होंने यथास्थिति को तोड़ा और लोगों की भलाई के लिए काम किया।

जिन समाज-सुधारकों की इस पुस्तक में चर्चा की गई है, उनमें 19वीं शताब्दीं के विचारक, जैसे—राजा राममोहन राय, फ्लोरेंस नाइटिंगल और 20वीं और 21वीं सदी के राबर्ट ओवन, फ्लोरेंस केली मार्टिन लूथर किंग, मोहम्मद युनुस आदि शामिल हैं।

सभी समुदायों और वर्गों में कुछ ताकतें भेदभाव पैदा करती हैं, जैसे भारत में पितृसत्ता या इस्लामी देशों में धर्म द्वारा दमन। अनेक औपनिवेशिक देशों में तानाशाही, रंग और पैदाइश रूप से भेदभाव।

लेखक 1789 की फ्रांस की क्रांति को इतिहास का पहला स्पष्ट सामाजिक-सुधार आंदोलन मानता है। फ्रांस की क्रांति ने सभी वर्गों के लिए स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के आदर्शों का अनुमोदन किया है। इससे संसार भर के दमित वर्गों को एक नई आशा की किरण दिखलाई पड़ी।

पिछले दो शताब्दियों में परिवर्तन के लिए हुए आंदोलनों में महिला सशक्तीकरण और वंचित वर्ग के लिए कल्याणकारी योजनाओं के नायकों को इस पुस्तक में वरीयता दी गई है। पुस्तक में सम्मिलित इन 20 समाज-सुधारकों ने अपने देशों में अपनी समझ से एक या एक से ज्यादा मुद्दों पर अपना आंदोलन खड़ा किया है। इन सभी समाज सुधारकों के प्रयासों से दुनिया एक बेहतर और सुखद समाज निर्माण में सहायक हुई और लगातार हो रहे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक मतभेदों में कमी आई।

हर पुस्तक की अपनी सीमा होती है। चाह कर भी एक पुस्तक में सभी कुछ समेटा नहीं जा सकता। इस पुस्तक को पढ़कर आज के युवा कुछ प्रेरणा ले सकें और अपनी जीवन-शैली को बदलकर भारत के नवनिर्माण में अपनी भागीदारी निभा सकें, तभी इस पुस्तक के प्रकाशन का उद्देश्य सफल होगा।

शू डॉग

समीक्षक : **रमेश कुमार सिंह**

लेखक : **फ़िल नाइट**

अनुवाद : **डॉ. सुधीर दीक्षित**

प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृष्ठ : 374

मूल्य : रु. 399/-

यह पुस्तक बहुराष्ट्रीय कंपनी नाइकी के सह-संस्थापक फ़िल नाइट की आत्मकथा 'शू डॉग' का हिंदी अनुवाद है। शू डॉग का अर्थ है, जूतों का ऐसा विशेषज्ञ, जो अपना सारा जीवन जूते डिजाइन करने, बनाने, बेचने व खरीदने को समर्पित कर देता है। फ़िल नाइट की कंपनी, स्पोर्ट्स शूज़ और खेल-कूद के दूसरे सामान बनाने वाली दुनिया की सफलतम कंपनियों में से एक है। इस पुस्तक में फ़िल की रोमांचक जीवन-यात्रा के कई पहलू सामने आए हैं। उन्होंने अपने

व्यावसायिक जीवन से जुड़े लोगों, प्रसंगों और घटनाओं का विस्तृत और रोचक वर्णन किया है। इस आत्मकथा में व्यापार की दुनिया की कई ऐसी बातें सामने आई हैं, जो अब तक रहस्य थीं। साथ ही फ़िल के व्यक्तिगत जीवन के भी प्रसंग हैं, जिनमें माता-पिता, प्रेमिका, पत्नी और बच्चों की चर्चा है।

ऑरेगन, अमेरिका में पले-बढ़े फ़िल बताते हैं कि उन्होंने स्टैनफ़र्ड बिज़नेस स्कूल में पढ़ाई के दौरान एक सेमिनार में जापान से सस्ते लेकिन उच्च गुणवत्ता के खेल के जूते आयात करने के बारे में शोधपत्र प्रस्तुत किया था। उस समय सबको उनका यह विचार सिरफिरा लगा। लेकिन फ़िल ने इसे अपना जुनून बना लिया। वे लिखते हैं—"संसार सिरफिरे विचारों से बना हुआ है। इतिहास सिरफिरे विचारों का एक लंबा काफिला है।"

दुनिया को देखने-समझने की इच्छा से युवा फ़िल ने 1962 में अनेक देशों की यात्रा की। वे जापान भी गए। फ़िल ने लिखा है कि वहाँ उन्होंने किस तरह जूते बनाने वाली ओनित्सुका कंपनी से अनुनय-विनय कर टाइगर ब्रांड के स्पोर्ट्स शूज़ का अमेरिका में वितरण का अधिकार हासिल किया। फ़िल से उनकी कंपनी का नाम पूछा गया। उन्होंने कहा—"ब्लू रिबन स्पोर्ट्स"। यह नाम उन्हें अनायास ही सूझा था। यह समझौता व्यापार की दुनिया में फ़िल की पहली कामयाबी थी। फिर उन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा।

सन् 1971 में कंपनी का नया नाम 'नाइकी' रखा गया। नाइकी यूनान में विजय की देवी मानी जाती हैं। आज यह कंपनी भी कामयाबी का एक पर्याय बन चुकी है, किंतु फ़िल की विजय-यात्रा आसान नहीं रही। वे अपनी स्टार्ट-अप कंपनी के सामने कदम-कदम पर आई चुनौतियों की चर्चा करते हैं—बैंकर्स और क्रेडिटर्स द्वारा अपमानित होने, प्रतिस्पर्द्धियों की चालबाजी, मुकदमेबाजी, व्यावसायिक छल-छंद तथा दिवालिया हो जाने के निरंतर खतरों की चर्चा। फ़िल खतरों से खेलते रहे, क्योंकि सुरक्षित और परंपरागत रास्ते उनको कभी पसंद नहीं आए। विकास की धीमी गति में उन्हें कभी यकीन नहीं रहा। वे मानते हैं कि अगर असफल ही होना है तो जल्दी-से-जल्दी असफल हो जाना चाहिए, ताकि उससे मिली सीख का अगले अभियान में उपयोग हो सके।

यह पुस्तक प्रेरक प्रसंगों और उक्तियों का पिटारा है। फ़िल बार-बार दुहराते हैं—"आपको उन नियमों के लिए याद किया जाता है, जिन्हें आप तोड़ते हैं।" उनके अनुसार, "जीवन विकास है। या तो आप विकास करते हैं या मर जाते हैं।" फ़िल सफलता के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगाने में यकीन करते हैं। वे कहते हैं—"कोई भी मुझे हरा सकता है, कोई भी मुझे रोक सकता है, लेकिन भगवान की कसम, ऐसा करने के लिए उसे खून-पसीना एक करना होगा।" फ़िल ने शून्य से शुरुआत की और साहस तथा कौशल की पूँजी से एक विशाल व्यापारिक साम्राज्य खड़ा कर दिया। उनका प्रिय उद्धरण है—"कायरों ने कभी शुरुआत ही नहीं की और कमजोर रास्ते में मर गए। बाकी बचे हम।"

फ़िल ने इस पुस्तक में अपने जीवन और 'नाइकी' के अब तक के सफर के यादगार पलों को संजोया है। वे अपने सहयोगियों और विरोधियों तथा कामयाबी और नाकामियों को याद करते हैं। स्वभाव से अंतर्मुखी और संकोची फ़िल अपने निर्मम आलोचक हैं। वे कहते हैं कि उन्होंने सैकड़ों-हजारों बुरे निर्णय लिए, अपने व्यावसायिक जीवन में और व्यक्तिगत जीवन में भी, जिनका उन्हें पछतावा है।

फ़िल ने बेहद प्रतिभाशाली और जुनूनी लोगों की टीम तैयार की। वे इन लोगों की विचित्रताओं और असमानता की चर्चा करते हैं, उनकी निष्ठा और समर्पण की भी। फ़िल ने नाइकी की कामयाबी का श्रेय अपनी टीम और सहयोगियों को दिया है। वे लिखते हैं—"मुझ पर कई लोगों का इतना ज्यादा कर्ज है कि मैं कभी नहीं उतार सकता।" उनकी प्रबंधन शैली अनोखी है। वे अपनी टीम को सिर्फ यह बताते हैं कि क्या करना है। काम कैसे करना है, इसे वे काम करने वाले पर छोड़ देते हैं।

फ़िल एक सफल उद्यमी ही नहीं, बेहतरीन किस्सागो भी हैं। उनकी लेखन शैली सरस और रोचक है, जो पाठकों को शुरू से अंत तक बाँधे रखती है। चरित्र चित्रण और परिस्थितियों के वर्णन में उन्हें महारत हासिल है। इस पुस्तक को संसार भर में सराहना मिली है। इस पर फिल्म भी बन रही है। इसके अनुवाद का स्तर प्रशंसनीय है।

फ़िल की कहानी अद्भुत साहस और जीतने की अपरिमित इच्छाशक्ति द्वारा हासिल महान उपलब्धियों की कहानी है। उनकी कहानी 'नाइकी' के इतिहास और विकास की कहानी है, 'नाइकी' जो उनके लिए मात्र एक व्यावसायिक उत्पाद नहीं है, बल्कि भावना है, विचार है और निरंतर नवाचार का माध्यम है। उन्होंने इस पुस्तक के समर्पण में लिखा है, "मेरे बच्चों के बच्चों के लिए, ताकि उन्हें पता रहे।" किंतु वास्तव में यह पुस्तक उन सबके लिए है, जो उद्यमी बनने की उत्कट चाह रखते हैं और जो 'नाइकी' की रोमांचक सफलता की कहानी उसके जनक फ़िल नाइट की जुबानी जानना चाहते हैं।

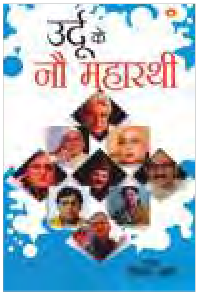

उर्दू के नौ महारथी

संपादक : **रिंकल शर्मा**

प्रेम और अदब की भाषा है—उर्दू। इस पुस्तक में उर्दू-लेखन में नाम कमाने वाले नौ महारथियों का जीवन-परिचय, भाषा के विकास में उनके अमूल्य योगदान और उनके प्रेरक प्रसंगों के बारे में बताया गया है। इन महारथियों में शामिल हैं—पद्मभूषण जावेद अख़्तर, गुलज़ार देहलवी, मुनव्वर राना, वसीम बरेलवी, अमरनाथ वर्मा, डॉ. खुर्शीद आलम, मंजर भोपाली, अंजुम रहबर और परवेज़ आलम साहब।

डायमंड बुक्स, नई दिल्ली।

पृ. 126; रु. 175.00

हुआ सवेरा

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

यह बाल काव्य-संग्रह है, जिसमें 38 छोटी-बड़ी प्रेरक व रोमांचक कविताएँ हैं। इसमें सवेरा, सूरज, जंगल, पेड़, धूप, हाथी, कौए, बंदर, किताब, सड़क, तारे, देश आदि लगभग सभी उन विषयों पर रचित कविताएँ शामिल हैं, जो बाल-मन से अछूते नहीं रहे हैं। ये कविताएँ मनोरंजन के साथ-साथ प्रेरणा भी देती हैं।

अयन प्रकाशन, नई दिल्ली।

पृ. 40; रु. 50.00

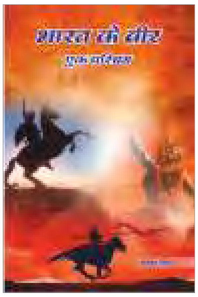

भारत के वीर : एक परिचय

सीमा तँवर

भारत के गौरवशाली इतिहास में कई ऐसे वीर राजा हैं, जिन पर सदा हमें गर्व रहेगा। यह पुस्तक उनमें से 11 वीर-वीरांगनाओं की संक्षिप्त जीवनी है। राजा विक्रमादित्य, राजा पृथ्वीराज चौहान, राजा भोज, रानी लक्ष्मीबाई, छत्रपति शिवाजी महाराज, रानी रुदा बाई, पोरस, वीरांगना हीरादे, महाराणा प्रताप, चार साहिबजादे, राजा ललितादित्य मुक्तापीड़—इन सबके बारे में इस पुस्तक में दिया गया है।

अनुराधा प्रकाशन, नई दिल्ली।

पृ. 32; रु. 75.00

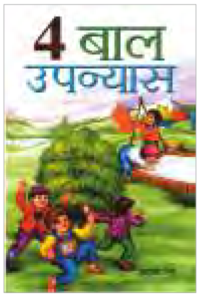

4 बाल उपन्यास

प्रकाश मनु

साहित्य अकादेमी के पहले बाल साहित्य पुरस्कार से सम्मानित प्रकाश मनु की इस पुस्तक में चार बाल उपन्यास हैं—चिंकू, मिंकू और दो दोस्त गधे, भोलू पढ़ता नई किताब, सांताक्लाज का पिटारा और गोलू भागा घर से। ये दिलचस्प और विलक्षण बाल उपन्यास बच्चों को कल्पना की उस निराली और रोमांचक दुनिया की यात्रा कराते हैं।

एस.के. इंटरप्राइजेज, दिल्ली।

पृ. 176; रु. 350.00

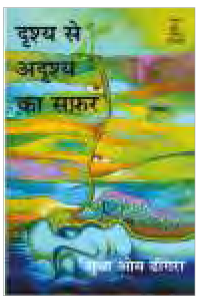

दृश्य से अदृश्य का सफ़र

सुधा ओम ढींगरा

लेखिका का यह हाल का ही उपन्यास है, जिसमें कोविड के दौरान सेवानिवृत्त एक चिकित्सक दंपत्ति के सामाजिक योगदान के बारे में बताया गया है। इस उपन्यास में 14 दृश्य हैं, जिनमें महामारी के दौरान परिवार के सदस्यों की एक-दूसरे के प्रति चिंता व्यक्त की गई है।

शिवना पेपरबैक्स, सीहोर, म.प्र.।

पृ. 152; रु. 150.00

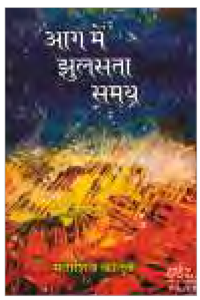

आग में झुलसता समय

सदाशिव कौतुक

यह एक काव्य-संग्रह है, जिसमें कुल 73 कविताएँ हैं। कवि ने सांसारिक समस्याओं के साथ-साथ अपने भीतर के आत्मसंघर्षमूलक द्वंद्वों को भी इन कविताओं में प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है। इन कविताओं की रचना इनसान के जीवनानुभवों को ध्यान में रखकर की गई है।

आधारशिला प्रकाशन, दिल्ली।

पृ. 96; रु. 200.00

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के 65वें स्थापना दिवस पर आयोजन

"मनुष्य में जिज्ञासा शैशवकाल से ही होती है। उसके कौतुक और कौतूहल दोनों होते हैं। समय के साथ जिज्ञासा ज्ञान में बदल जाती है। प्रयोग के द्वारा सूक्ष्मतम ज्ञान तक पहुँचना ही विज्ञान है। यह यात्रा निरंतर चलती रहती है। हमारी चेतना का स्तर बढ़ने के साथ ज्ञान और विज्ञान परिष्कृत होते हैं।" उक्त उद्बोधन जाने-माने शिक्षाविद और 'विद्या भारती प्रदीपिका' के संपादक डॉ. ललित बिहारी गोस्वामी ने राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के 65वें स्थापना दिवस पर व्यक्त किए। उन्होंने कहा, "राष्ट्रीय पुस्तक न्यास संस्था से संस्थान बन गया है। न्यास ने हर प्रकार के साहित्य को जन-जन तक पहुँचाया है। कोई भी विषय और भाषा नहीं है, जिसमें पुस्तक न छपी हो। न्यास का सबसे बड़ा अनुष्ठान घरों तक वाजिब मूल्य पर पुस्तकों को पहुँचाना है।" ध्यातव्य है कि राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की स्थापना 01 अगस्त, 1957 को भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू के सपनों को साकार करते हुए तत्कालीन शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद ने की थी।

इस अवसर पर न्यास के अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा ने कहा, "किसी भी संस्था की प्रसिद्धि लोगों के कार्य करने से होती है और लोगों की प्रसिद्धि संस्था की प्रगति से। वह वटवृक्ष होती है जिसकी छाया में हम विकास करते हैं। हमारा लक्ष्य पुस्तक संस्कृति को विकसित करना है। न्यास ने अपना साहित्य तो प्रकाशित किया ही है, साथ ही उसने विश्व के श्रेष्ठ साहित्य को भारतीय भाषा में प्रकाशित किया है। साहित्य को भारतीय संदर्भ में भारतीय लोगों के बीच लाने का कार्य न्यास ने किया है।" उन्होंने 'चरैवेति-चरैवेति' का मूल मंत्र दिया।

न्यास के निदेशक श्री युवराज मलिक ने कहा कि न्यास की परिकल्पना 65 वर्ष पहले की गई थी, जो आज एक वृक्ष के रूप में खड़ा होकर न केवल भारत, बल्कि पूरे विश्व में एक पहचान के रूप में स्थापित है। अपनी स्थापना से लेकर अभी तक न्यास ने पाठकों के विश्वास को बनाए रखा है और यह हम सब की जिम्मेदारी है कि इसे बरकरार रखें। हम विभिन्न भाषाओं में काम कर रहे हैं और साहित्य देश के कोने-कोने तक पहुँचा रहे हैं। इसे और आगे ले जाने की आवश्यकता है। न्यास राष्ट्र निर्माण में अपने पुस्तक प्रकाशन और प्रोन्नयन से अहम भूमिका निभा रहा है।

इस अवसर पर न्यास में 25 वर्ष की सेवा पूर्ण कर चुके अधिकारियों और कर्मचारियों को शॉल और प्रशस्ति पत्र देकर सम्मानित किया गया। कार्यक्रम के अंत में न्यास की मुख्य संपादक व संयुक्त निदेशक श्रीमती नीरा जैन ने धन्यवाद ज्ञापित किया। संचालन न्यास के हिंदी भाषा के संपादक श्री पंकज चतुर्वेदी ने किया।

हम फिट तो इंडिया फिट

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में, संस्थान के कर्मचारियों के लिए खेल प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। दो कि.मी. की दौड़ में पुरुष वर्ग में श्री अरविंद नागर ने प्रथम, श्री मोहन सिंह ने द्वितीय और श्री आशीष रावत ने तृतीय स्थान हासिल किया, वहीं महिला वर्ग में सुश्री श्वेता कुमारी ने प्रथम, सुश्री साक्षी नेगी ने द्वितीय और श्रीमती पूजा रावत ने तृतीय स्थान हासिल किया। विजेता खिलाड़ियों को पदक और प्रमाण-पत्र देकर सम्मानित करते हुए न्यास के अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा ने प्रतिभागियों को जीत की बधाई दी। इस मौके पर न्यास के निदेशक श्री युवराज मलिक ने प्रतिभागियों का उत्साहवर्द्धन करते हुए कहा कि खेल आपके मन-मस्तिष्क और शरीर को चुस्त-दुरुस्त बनाते हैं। खेल मूल्यों के विकसित होने से आपके व्यक्तित्व का विकास होता है।

‘भारत वैभव’ पुस्तक का विमोचन

आत्मगौरव है भारत की ज्ञान परंपरा : डॉ. मोहन भागवत

“ऊपर बढ़ने के लिए आत्मविश्वास चाहिए और आत्मविश्वास के लिए आत्मगौरव। आत्मगौरव के अलावा कोई गौरव नहीं, भारत का गौरव है उसकी ज्ञान परंपरा। हमारी ज्ञान परंपरा की विशेषता उसकी पूर्णता है। ज्ञान अनुभव से प्राप्त होता है। विद्या ज्ञान को जानना है।” उक्त उद्गार डॉ. मोहन भागवत, माननीय सरसंघचालक, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने ‘भारत वैभव’ पुस्तक के विमोचन के दौरान व्यक्त किए। उन्होंने कहा, “भारत का जन्म पूरे विश्व में अपनी ज्ञान परंपरा को प्रसारित करने के लिए ही हुआ है और आत्मा से लेकर अनात्मा तक का ज्ञान इस पुस्तक में विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। जिसे भारत को जानना है, उसे इस पुस्तक को अवश्य पढ़ना चाहिए। यह पुस्तक न केवल विश्वविद्यालयों, कॉलेजों, बल्कि हर घर में होनी चाहिए। गागर में सागर भरने वाली इस पुस्तक का अनुवाद राष्ट्र की सभी भाषाओं में किया जाना चाहिए और व्यापक प्रचार होना चाहिए।”

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के मुख्यालय में 10 अगस्त, 2021 को श्री ओइम् प्रकाश पाण्डेय द्वारा लिखित पुस्तक ‘भारत वैभव’ का विमोचन किया गया। इस पुस्तक में भारत की गौरवपूर्ण सभ्यता एवं संस्कृति के विभिन्न आयामों को दर्शाने के अतिरिक्त वैश्विक विद्वानों द्वारा भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रशस्ति में व्यक्त किए गए उद्गारों को समावेशित किया गया है। इस अवसर पर केरल के माननीय राज्यपाल श्री आरिफ मोहम्मद खान; डॉ. सत्यपाल सिंह, माननीय संसद सदस्य; न्यास-अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा, न्यास-निदेशक श्री युवराज मलिक और देश के जाने-माने शिक्षाविदों की गरिमामयी उपस्थिति रही।

माननीय राज्यपाल श्री आरिफ मोहम्मद खान ने कहा कि किसी भी राष्ट्र का मनोबल और आत्मविश्वास उसकी संस्कृति से ही जागृत होता है। भारतीय संस्कृति, सनातन संस्कृति है और यह हमारा सामूहिक दायित्व है कि हम इसे जानने की भरपूर प्रयास करें। दुनिया में चार बड़ी संस्कृतियाँ हैं—ईरान, चीन, रोम और भारत। इनमें से भारत अपनी ज्ञान परंपरा के लिए जाना जाता है।

डॉ. सत्यपाल सिंह ने कहा कि इस पुस्तक का मूल तत्व ‘एक भारत श्रेष्ठ भारत’ है और देश को जिस परम वैभव को पाने का निरंतर प्रयास करना चाहिए, उसके लिए यह पुस्तक पहला कदम है। भारत अपनी ज्ञान और विज्ञान परंपरा के लिए विश्व गुरु माना जाता रहा है और इसी गौरवशाली परंपरा से आने वाली पीढ़ियों को परिचित करने की आवश्यकता है।

न्यास-अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा ने अतिथियों का स्वागत करते हुए न्यास की पुस्तक प्रोन्नयन संबंधी गतिविधियों के बारे में संक्षिप्त जानकारी दी। पुस्तक के बारे में उन्होंने कहा कि भारत की ज्ञान परंपरा विश्व में सबसे प्राचीन है और यह पुस्तक इन्हीं भारतीय मूल्यों को विश्व में पुनः स्थापित करने में अहम भूमिका निभाएगी।

पुस्तक के लेखक श्री ओइम् प्रकाश पाण्डेय ने कहा कि संस्कृति राष्ट्र रूपी देह की आत्मा होती है और भारत की संस्कृति अपनी गौरवशाली परंपराओं के साथ आज भी जीवंत है। यह पुस्तक नई पीढ़ी में जो भारतीय ज्ञान परंपरा से दूर है, में राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का प्रयास है। अंत में उन्होंने पुस्तक के प्रकाशन के लिए न्यास को धन्यवाद दिया।

न्यास-निदेशक श्री युवराज मलिक ने सभी अतिथियों का आभार प्रकट करते हुए आश्वासन दिया कि आने वाले समय में इस प्रकार का साहित्य और मिलेगा व ज्ञान आधारित समाज के निर्माण में न्यास हमेशा अग्रणी रहेगा।

डॉ. मोहन भागवत, श्री आरिफ मोहम्मद खान और डॉ. सत्यपाल सिंह ने राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के पुस्तक विक्रय केंद्र के साथ-साथ न्यास परिसर का भी अवलोकन किया। श्री भागवत ने न्यास की पुस्तकों की प्रशंसा में कहा कि साहित्य, लोककला, संस्कृति, विज्ञान व बाल साहित्य के प्रकाशन के साथ-साथ भाषा प्रोन्नयन में न्यास ने अतुलनीय योगदान दिया है। राज्यपाल महोदय ने भी न्यास के प्रयासों की प्रशंसा की और भविष्य में भी अच्छे से अच्छा साहित्य पाठकों तक पहुँचाने के लिए शुभकामनाएँ दीं। डॉ. सत्यपाल सिंह ने पुस्तक विक्रय केंद्र की खूब सराहना की और भविष्य में भी प्रयासरत रहने की प्रेरणा दी।

सूचना

सदस्यता ग्रहण करने हेतु ऑनलाइन शुल्क जमा करने के लिए खाते का विवरण इस प्रकार है–

For	:	**National Book Trust, India**
Bank	:	**Canara Bank**
Branch	:	Vasant Kunj, New Delhi-110070
A/c no.	:	**3159101000021**
IFSC Code	:	**CNRB0003159**
MICR Code	:	**110015187**

अनूदित पुस्तकों का विमोचन

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत और इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में अनूदित बाल साहित्य की 24 पुस्तकों का विमोचन किया गया। यह आयोजन केंद्रीय सांस्कृतिक समिति की ओर से किया गया। इस अवसर पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय की कुलपति प्रो. संगीता श्रीवास्तव ने कहा कि जो नजर बचपन में बनती है, वह उम्र भर हमारे साथ रहती है। पहले यह नजर हमें अपने बुजुर्गों के अनुभव की कहानियों के जरिये मिलती थी, अब यह काम पुस्तकें कर रही हैं। अनुवाद अपने आप में एक जटिल प्रक्रिया है, फिर बाल साहित्य का अनुवाद तो और भी तैयारी की माँग करता है। उन्होंने कार्यशाला के संयोजक प्रो. संतोष भदौरिया के इस प्रयास की सराहना की और साथ ही राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के साथ मिलकर की गई बाल साहित्य की अनुवाद कार्यशाला की सफलता पर खुशी जाहिर की।

प्रो. पंकज कुमार ने पुस्तक संस्कृति को विस्तार देने में न्यास की भूमिका की चर्चा करते हुए कहा कि न्यास साहित्य प्रकाशन में नए आयाम स्थापित कर रहा है। कार्यक्रम के समन्वयक प्रो. संतोष भदौरिया ने अनुवाद की पूरी प्रक्रिया बताते हुए इसमें आने वाली चुनौतियों पर विस्तृत चर्चा की। इस अवसर पर अनूदित पुस्तकों में से एक की लेखिका मोपिया बासु का बधाई संदेश पढ़ा गया। इस दौरान राजभाषा अनुभाग की विविध प्रतियोगिताओं के लिए प्रतिभागियों को पुरस्कृत कर प्रमाण-पत्र वितरित किए गए। इस अवसर पर डॉ. जया कपूर, डॉ. धनंजय चोपड़ा जैसे वरिष्ठ शिक्षाविद उपस्थित रहे।

अनूदित पुस्तकें इस प्रकार हैं–

1. नन्हे हाथी की दावत, **2.** खोका, **3.** रिंटू और उसका कंपास, **4.** नानी की सीख, **5.** सात सीढ़ियाँ सूरज की, **6.** भारत के मधुर रंग, **7.** मददगार हाथ, **8.** सब-कुछ उल्टा-पुल्टा है, **9.** भक्त सालबेगा, **10.** क्या करें रावण का!, **11.** छोटू की विपदा, **12.** शीला और लीला, **13.** हम सबसे अलग हैं, **14.** दिल्ली, सौवाँ जन्मदिन मुबारक हो, **15.** बूँद, **16.** गोवा, **17.** पुंटी की शादी, **18.** जीरो मीठे, **19.** शीबु भेड़, **20.** नहीं रहे दादी-नानी के दिन, **21.** दिल्ली कहती है मुझे रंगो, **22.** अच्छे दोस्त, **23.** गोलू उल्लू, **24.** हड्डी से पत्थर।

---

nbt.india

आगामी अंक के लिए

पुस्तक संस्कृति

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की द्विमासिक पत्रिका

पत्रिका का **मार्च-अप्रैल, 2022** का अंक **'भारतीय सेना'** विशेषांक होगा।

जिसमें भारत की आन-बान और शान कही जाने वाली भारतीय सेना के पराक्रम, इतिहास, शौर्य, कार्यप्रणाली, संस्थाएँ, करिअर, व्यक्तित्व, युद्ध, पुस्तकें एवं लेखकों पर केंद्रित लेख, रिपोर्ट, साक्षात्कार आदि सामग्री होगी।

इस अंक के लिए सामग्री **15 नवंबर, 2021** तक भेज सकते हैं।

लेखकों हेतु निर्देश : **1.** सामग्री अधिकतम दो हजार शब्दों तक हो। **2.** रचना मौलिक एवं अप्रकाशित होनी चाहिए। **3.** रचना के साथ संदर्भ के चित्र अवश्य भेजें। **4.** लेखक का चित्र, पाँच पंक्ति में परिचय (संपूर्ण जीवनवृत्त नहीं) भेजें, जिसमें संप्रति, प्रकाशन, सम्मान आदि का विवरण हो। संपर्क के लिए पता, ई-मेल या फोन नंबर जो भी सार्वजनिक करना चाहें, भेजें। **5.** किसी विशेषांक में प्रकाशनार्थ सामग्री समयसीमा के पश्चात भेजने पर स्वीकार्य नहीं होगी। **6.** पत्रिका के संपादक के ई-मेल पर भेजी गई रचनाएँ ही स्वीकार्य होंगी। रचना कृति, यूनिकोड / शिवा मीडियम फॉण्ट में एम.एस. वर्ड या पेजमेकर में ही हो।

नोट : पत्रिका का मुख्य उद्देश्य पुस्तक प्रोन्नयन और पठन अभिरुचि के विकास के लिए उपयोगी सामग्री का प्रकाशन करना है। कहानी-कविताओं के लिए इसमें कम ही स्थान है।

संपादक (पुस्तक संस्कृति), राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com • दूरभाष : 011-26707758, 26707876

'आजादी का अमृत महोत्सव' कार्यक्रम में पुस्तक विमोचन

रक्षा मंत्री श्री राजनाथ सिंह ने 13 अगस्त, 2021 को राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा सद्यप्रकाशित पुस्तक 'डीड्स ऑफ गैलेंट्री : फिफ्टी ईयर्स ऑफ 1971 विक्ट्री' का विमोचन किया। यह पुस्तक 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध का विवरण प्रस्तुत करती है। इसमें 20 चयनित युद्धों की जानकारी दी गई है। साथ ही, इसमें भारतीय सैनिकों की वीरता, साहस और बलिदान पर प्रकाश डाला गया है। संपादन श्री अमलेश कुमार मिश्रा ने किया है।

ध्यातव्य है कि भारत की स्वतंत्रता की 75वीं वर्षगाँठ को 'आजादी का अमृत महोत्सव' के रूप में मनाया जा रहा है। देशहित में आहुति देने वाले स्वतंत्रता सेनानियों को नमन करने व लोगों में देशभक्ति की भावना जगाने के उद्देश्य से सशस्त्र बलों और रक्षा मंत्रालय के विभिन्न संगठनों द्वारा आयोजित प्रमुख कार्यक्रमों की एक शृंखला का वर्चुअल शुभारंभ किया गया। इस अवसर पर रक्षा राज्य मंत्री श्री अजय भट्ट, चीफ ऑफ डिफेंस स्टाफ जनरल बिपिन रावत, थल सेनाध्यक्ष जनरल एम.एम. नरवणे, नौ सेनाध्यक्ष एडमिरल करमबीर सिंह, वायु सेना प्रमुख एयर चीफ मार्शल आर.के.एस. भदौरिया सहित कई सैन्य अधिकारी उपस्थित थे।

75वें स्वतंत्रता दिवस पर ध्वजारोहण

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के मुख्यालय में 75वें स्वतंत्रता दिवस पर राष्ट्रीय ध्वज फहराया गया। इस अवसर पर न्यास-निदेशक श्री युवराज मलिक ने न्यास के कर्मचारियों को स्वतंत्रता दिवस की बधाई देते हुए कहा कि विचारों की स्वतंत्रता के बिना किसी तरह का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता और विचारों की स्वतंत्रता के लिए अध्ययन करना चाहिए। 75वें स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर हमें स्वतंत्रता सेनानियों और स्वतंत्रता संग्राम के बारे में अधिक-से-अधिक पढ़ने का संकल्प लेना चाहिए और उन साहसी सिद्धांतों को अपने जीवन में आत्मसात करना चाहिए। कार्यक्रम में न्यास के सभी कर्मचारी मौजूद थे।

शिक्षा राज्य मंत्री : डॉ. सुभाष सरकार

सामाजिक कार्यकर्ता, वरिष्ठ राजनीतिज्ञ, दूरदर्शी और कुशल चिकित्सक डॉ. सुभाष सरकार को शिक्षा राज्य मंत्री का कार्यभार सौंपा गया है। वे अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, कल्याणी बोर्ड और भारतीय नर्सिंग परिषद के सदस्य व अनुभवी स्त्रीरोग विशेषज्ञ भी हैं। पश्चिम बंगाल की बांकुरा लोकसभा सीट से सांसद डॉ. सुभाष सरकार का जन्म 25 नवंबर, 1953 को बांकुरा में हुआ था। कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी.एस-सी. और एम.बी.बी.एस. करने के बाद वे चिकित्सीय अध्ययन में लग गए और स्त्रीरोग में विशेषज्ञता हासिल की।

डॉ. सुभाष सरकार संसद में स्वास्थ्य और परिवार कल्याण की स्थायी समिति के साथ-साथ विद्युत मंत्रालय और नवीन एवं नवीनीकरण ऊर्जा मंत्रालय की सलाहकार समिति के सदस्य भी हैं। उन्होंने कई वैज्ञानिक और सामाजिक संगोष्ठियों में अध्यक्षता की है। साथ ही, कई लोकोपकारी और सामाजिक संगठनों से भी संबद्ध रहे हैं, जिनमें रामकृष्ण मिशन, भारत सेवाश्रम संघ, विद्या भारती, स्वैच्छिक रक्तदाता संघ, लायन्स क्लब और भारत विकास परिषद शामिल हैं।

माननीय मंत्री जी की रुचि शिक्षण, खेल और सांस्कृतिक एवं सामाजिक कार्यों में भी है। उन्हें प्रकृति से विशेष लगाव है। वे अन्य लोगों को भी प्रकृति से सीख लेने, जीवन में योगासन और खेलों को अपनाकर स्वास्थ्य के प्रति जागरूक बने रहने की प्रेरणा देते हैं। वे बांकुरा के कई स्पोर्ट्स क्लबों से भी जुड़े हैं।

पाठकीय प्रतिक्रिया

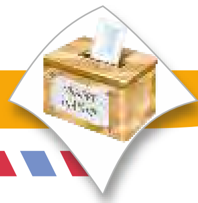

पत्रिका का जुलाई-अगस्त, 2021 का अंक 'नेताजी सुभाष चंद्र बोस विशेषांक' के रूप में मिला, हृदय से आपका अभिनंदन करता हूँ।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के अतुलनीय योद्धा नेताजी को इस देश के इतिहासकारों एवं राजनीतिज्ञों ने भुलाने का कुत्सित प्रयास किया, लेकिन आपने अपने इस विशेषांक से नेताजी सुभाष के सर्वतोमुखी योगदान को प्रबुद्ध पाठकों तक पहुँचाने का सराहनीय कार्य किया है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास अभिनंदन का पात्र है। 'विरासत' में नेताजी के रेडियो प्रसारण से संबद्ध लेख पढ़कर मन प्रसन्न हो उठा है।

मेरे उत्तराखंड के पत्रकार मित्र जय सिंह रावत का आलेख 'उत्तराखंड से मिली नेताजी को प्रेरणा' पढ़कर तो गर्व हुआ है और देहरादून के दुर्लभ चित्र देखकर मन हर्षित हुआ है। श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव और श्री निरंकार सिंह के आलेखों ने प्रभावित किया। इस अंक की सबसे बड़ी विशेषता यह लगी कि आपने न्यास के चित्रकार से 'चित्र' बनवाकर लेखों का आकर्षण बढ़ा दिया है। पूरा विशेषांक संग्रहणीय बन गया है।

–डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'

'पुस्तक संस्कृति' का जुलाई-अगस्त 2021 अंक प्राप्त हुआ, हार्दिक धन्यवाद एवं आभार। नेताजी सुभाष चंद्र बोस को समर्पित इस अंक में समाहित सभी लेख ज्ञानवर्धक एवं रोचक लगे। प्रधान संपादक प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा जी का संपादकीय इस अंक की आत्मा है। उन्होंने नेताजी के जीवन को भारतीय समुराई के रूप में परिभाषित कर एक नया आयाम प्रदान किया है। प्रेरणा स्तंभ के अंतर्गत श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव द्वारा रचित लेख नेताजी के जीवन से संबंधित प्रेरक प्रसंग मन को छू गया। इसके अलावा श्री निरंकार सिंह एवं श्री प्रमोद भार्गव द्वारा रचित आलेख भी उत्कृष्ट रहे। पत्रिका के शब्द ज्ञान स्तंभ के अंतर्गत 'आओ भारतीय भाषाएँ सीखें' ने हिंदी भाषा के साथ अन्य भारतीय भाषाओं में भी शब्द कौशल की विधा से परिचित कराया। अंत में आदरणीय संपादक जी एवं उनकी टीम को एक संग्रहणीय अंक पाठकों को उपलब्ध कराने हेतु हार्दिक साधुवाद एवं आगामी अंकों हेतु शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

–डॉ. दीपक कोहली, संयुक्त सचिव, लखनऊ

हमारे पुस्तकालय में पत्रिका के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक संकलित हैं। जहाँ वर्तमान में सोशल मीडिया के प्रभाव में पत्रिकाएँ विलुप्त होती नजर आ रही हैं, ऐसे समय में 'पुस्तक संस्कृति' को नियमित रूप से पाठकों तक पहुँचाना अत्यंत सराहनीय है। ऐतिहासिक संकलन के रूप में नेताजी सुभाष चंद्र बोस विशेषांक के लिए हार्दिक धन्यवाद!

–चिन्मय दत्ता, चाईबासा, झारखंड

पत्रिका के जितने भी अंक अब तक मैंने पढ़े हैं, सभी बेहतरीन अंक हैं। उम्दा लेखन शैली, संपादन इसे और भी बेहतरीन बनाता है। गोविंद सर के लेख बहुत ही सटीक और अच्छे होते हैं। ये पत्रिका पढ़ने में रुचि रखनेवालों के लिए एक अच्छी पत्रिका है। बधाई!

–विनीत शर्मा

RNI NO. DELHIN / 2016 / 68219

मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के कुछ नए प्रकाशन

नर्मदा आए कहाँ से जाए कहाँ

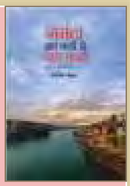

आलोक मेहता

इस पुस्तक में भारतीय उपमहाद्वीप की पाँचवीं सबसे बड़ी नदी नर्मदा के उद्भव से मुहाने तक का सफर, ऐतिहासिक महत्व, नर्मदा तट के इर्द-गिर्द और आस-पास के परिवेश के अनेकानेक पर्यटन स्थलों की भी जानकारी दी गई है। इसमें नदी के सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और धार्मिक महत्व पर प्रकाश डालने के साथ-साथ जल-प्रदूषण के प्रति भी चिंता प्रकट की गई है।

पृ. 102; रु. 160.00

21वीं सदी : भूराजनीति, लोकतंत्र और शांति

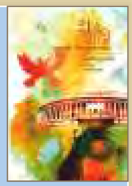

बाल्मीकि प्रसाद सिंह

अनुवादक : **दीपाली ब्राह्मी**

सिक्किम के 14वें राज्यपाल श्री बाल्मीकि प्रसाद सिंह की पुस्तक का यह अनूदित संस्करण है। इसमें ऐसे मुद्दों की जाँच की गई है, जिनकी 21वीं सदी के निर्माण में प्रमुख भूमिका अदा करने की संभावना है। इसमें भू-राजनीति, लोकतंत्र व शांति, शैक्षणिक संस्थानों, प्रगतिशील धार्मिक एवं सामाजिक समूहों, समुदायों, अंतरराष्ट्रीय संस्थानों से जुड़े मुद्दों पर प्रकाश डाला गया है।

पृ. 380; रु. 455.00

जलियाँवाला बाग 13 अप्रैल 1919

रश्मि कुमारी

सन् 1919 में घटित जलियाँवाला बाग हत्याकांड के 100 साल पूरे होने के उपलक्ष्य में लेखिका ने यह पुस्तक लिखी है। इसमें 1857 से 1915 तक के स्वतंत्रता आंदोलन की पृष्ठभूमि, रॉलेट बिल, भारत में गांधीजी की भूमिका, जलियाँवाला बाग हत्याकांड व उसके शहीदों की सूची के बारे में विस्तार से बताया गया है।

पृ. 130; रु. 165.00

क्रांतिकारी दुर्गा भाभी

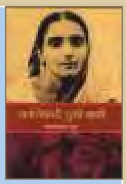

सत्यनारायण शर्मा

क्रांतिकारी भगवती चरण बोहरा की जीवनसंगिनी दुर्गा देवी ने अपने पति की मृत्योपरांत भी आजादी की लौ को जलाए रखा। वे 'दुर्गा भाभी' के संबोधन से विख्यात हुईं। पुस्तक में लेखक ने उनके मुख से सुनी हुई क्रांतिकारी गाथा को पाठकों के समक्ष प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। पुस्तक 21 अध्यायों में विभाजित है।

पृ. 150; रु. 200.00

सहरिया आदिवासी जीवन और संस्कृति

प्रमोद भार्गव

मध्य प्रदेश के उत्तर-पश्चिमी भाग में बसे सहरिया आदिवासियों की पृष्ठभूमि, उत्पत्ति, पहनावा, आभूषण, संस्कृति, केश-सज्जा, धर्म, आस्था, त्योहार, संस्कृति, लोक-नृत्य, बोली, शिक्षा, आहार, संस्कार आदि की विस्तृत जानकारी इस पुस्तक में दी गई है। इसमें सहरियों के विस्थापन, उनके संघर्ष और उनके उन्नयन के लिए सरकारी प्रयासों पर भी प्रकाश डाला गया है।

पृ. 144; रु. 240.00

आँख भर उमंग

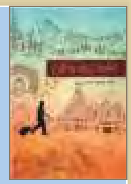

राजेश कुमार व्यास

केंद्रीय साहित्य अकादेमी के सर्वोच्च सम्मान से सम्मानित डॉ. राजेश कुमार व्यास का यह यात्रा-वृत्तांत है, जिसमें उनके द्वारा लगभग एक दशक में की गई यात्राओं का रोचक और बहुत ही सुंदर विवरण प्रस्तुत है। पुस्तक में 75 से अधिक निबंध हैं, जिनमें चंबल के बीहड़ से लेकर नालंदा के खंडहर, ब्रह्मगिरि पर्वत की लोकप्रियता से लेकर तीर्थराज पुष्कर आदि का यात्रा-वर्णन है।

पृ. 250; रु. 310.00

आचार्य निशांतकेतु की चयनित कहानियाँ

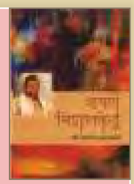

आचार्य निशांतकेतु

लेखक चंद्र किशोर पांडेय, जो आचार्य निशांतकेतु के नाम से प्रख्यात हैं, उनकी 28 चयनित कहानियों का संग्रह इस पुस्तक में है। ये कहानियाँ नारी सशक्तीकरण, वंचित लोगों की वेदना, मानवीय मूल्य, श्रम की महत्ता, पर्यावरण-चेतना, आध्यात्मिक चेतना आदि सामाजिक विषयों पर लिखी गई हैं।

पृ. 178; रु. 200.00

nbt.india
एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.

फोन : 011-26707761 ● **ई-मेल** : nro.nbt@nic.in

वेबसाइट : www.nbtindia.gov.in